जितना आश्चर्य होना स्वाभाविक था वह सब कुछ न हुआ । वह गंभीरता से चुपचाप बैठी सब सुनती रही...हाँ...ना कुछ न बोली । रमेश ने फिर उसके सामने विवाह के बाद प्रेस खोलने की योजना भी रखी । रमेश कहता चला गया और उसने चन्द्रा को यह समझाने की चेष्टा की कि किस प्रकार पाच सात साल मे उसका प्रेम पूरा उत्तर प्रदेश मे नाम कर लेगा और चन्द्रा के लगाये पैसे चारो ओर से पैसा खीचने लगेगे । फिर चन्द्रा के बराबर कोई अमीर न होगा । यह सब बाते रमेश ने उसे बडे विस्तार से समझा दी और अपने प्रेम की गहरारी बताने मे मी कोई कसर न रखी । अपने हृदय की बात कहकर रमेश चुप हो गया । चन्द्रा कुछ न बोली ।

चन्द्रा के इस मौन से रमेश की हिम्मत बढी । वह समझा मेरे समस्त प्रस्तावो से...विवाह क मूल प्रस्ताव से भी...चन्द्रा सहमत है । परन्तु वह चुप क्यो है ? सकोच ! लज्जा ! ! संभवत. नारी के सहज स्वभाव के इन गुणो या अवगुणो के कारण ही वह अपनी सहमति प्रकट नही कर रही है । अवश्य ही वह भी मरी ही भाँति इस समय भावावेश से रोमाचित और पुलकित बैठी हुई भविष्य सबधी चित्रो को कल्पना के नेत्रो से देख रही है । उसकी चुप्पी ? उसका और दूसरा अर्थ हो ही क्या सकता है ? निश्चय हो वह मेरी ओर आकृष्ट है...सभवतः मुझ मे प्रेम भी करती हो ! वह वयस्का, स्वस्थ और सुरूपा है । क्या उसे भी दाम्पत्य साहचर्य की आकाक्षा अनुभव न होती होगी ? अवश्य ही होती होगी । परन्तु बेचारी...! नारी ! ! ! सकोची और सलज्ज स्वभाव वाली । मैं...तरुण, शिक्षित, कवि, स्वस्थ,...गरीब सही, परन्तु धन ?...चन्द्रा को, भला धन की क्या आवश्यकता है ?

चन्द्रा अब भी चुप बैठी थी । वह अपने ही अन्दर उबल रही थी, वह सोच रही थी रमश के दुःसाहस की बात...उसकी चालाकी के संबंध

में। सहसा रमेश ने उसका हाथ पकड़ लिया। दु:साहस की यह पराकाष्ठा ! चन्द्रा के शरीर में जैसे बिजली दौड़ गई। उसने उसके गाल पर एक चाँटा मारा और घर से तुरन्त निकल जाने को कह ही रही थी कि...रजनीकान्त और कीर्ति लौट आए। उदयन तो थकान के मारे अपने कमरे को ओर सोने को चाला गया। परन्तु चन्द्रा की उत्तेजित आवाज़ सुनकर यह दोनों चन्द्रा के कमरे में गये। इनको आता देख चन्द्रा ने इन दोनो को खरी-खरी सुनाई। जो बाते अब तक उसके मन में पक रही थी उसने इस समय सब सुनाईं। कीर्ति को चन्द्रा की बाते बहुत बुरी लगी। रमेश अकस्मात् आकाश से धरती पर आ गया। वह चन्द्रा के इस व्यवहार से सहम सा गया। साथ ही इस बीच उसके हृदय मे चन्द्रा के प्रति जो कोमलता उत्पन्न हो गई थी वह मानो शत्छिन्न होकर धरती पर बिखर गई। सब से अधिक ठेस तो उसके गर्व का लगी ... उसके आत्माभिमान की। उसके प्रेम का यह अपमान ! उसके प्रस्तावों का यह निरादर ! जिस स्वर्णिम भविष्य की कल्पाना वह कर रहा था ... वह दूर... बहुत दूर ... धुँए के समान उड़ कर बिलीन हुआ जा रहा था। उसके स्थान पर सामने खड़ी थी। क्रोध से तमतमाता हुआ मुखमडल लिये चन्द्रा और उसके इस अपमान के दो साक्षी...कीर्ति और रजनीकान्त। उसको अपने व्यक्तित्व की शक्ति का बाड़ा अभिमान था। परन्तु चन्द्रा ने आज प्रमाणित कर दिया कि उसका वह अभिमान मिथ्या था। रमेश खड़ा शून्य दृष्टि से देख रहा था उसके मनोकल्पित समस्त चित्र विलीन हो गये हैं।... न प्रेयसी, न उसकी अतुल संपत्ति और न उसके धन से स्थापित प्रेस ! कुछ भी नही ! ! इस समय उसके हृदय में प्रेम के स्थान पर क्रोध और प्रतिहिंसा की भावना का सागर लहरा रहा था। उसने चन्द्रा से बदला लेने की ठानी। उसका हाल इस समय उस साँप की भाँति था। जिसके उठे हुए फन को किसी ने जानबूझ कर कुचल

दिया हो। चन्द्रा का जन्मदिन, जिस से उसे बड़ी-बड़ी आशाएँ थीं, इस प्रकार समाप्त हुआ।

रमेश ने शहर छोड़ देने की ठान ली। कीर्ति भी अत्यंत खिन्न थी...उसकी समझ मे नही आ रहा था कि रमेश में आखिर ऐसी बुराई क्या थी ? रजनीकान्त इस बात पर बहुत खुश हो रहा था कि वह इन दो अविवाहितो का विवाह तो करने के प्रयत्न में लगा हुआ था। परन्तु...

कुछ दिनों बाद रमेश इलाहाबाद चला गया। चन्द्रा फिर जाकर होस्टल मे रहने लगी और रजनीकान्त ने अपना पुराना काम शुरू कर दिया। साथ ही साथ, वह कुमारी महाविद्यालय के सरक्षकों और प्रबंधकों से परिचय प्राप्त करने की भी कोशिश करने लगा। रजनीकान्त जैसे काइयाँ एवं चालाक आदमी को इस मे सफलता प्राप्त करने मे केवल एक महीना लगा। वह पुन: किसी के घर मे बच्चों को पढ़ाता, किसी के घर राशन खरीदने मे सहायता देता, तो किसी के घर जा कर पूजा पाठ करता। कुछ ही महीनों मे वह इन समस्त घरों की महलाओं से बिना सकोच के बात-चीत करने लगा। विद्यालय की बात चल पड़ने पर अध्यापिकाओं की चर्चा होना भी स्वाभाविक ही था। इन चर्चाओं में चन्द्रा का नाम आता और रजनीकान्त को चन्द्रा की बुराई करने का मौका मिलता। कही वह कहता कि लड़कियों का सबंध बाहर वालों से कराती है। उपयुक्त अवसर देखकर वह यहाँ तक कह देता कि विद्यालय के प्रबंधकों को तो वह पानी पी-पी कर कोसती है। वह इस प्रकार धीरे-धीरे प्रच्छन्न रूप से चन्द्रा के विरुद्ध प्रचार करता रहा।

फलतः सारे संरक्षक एवं प्रबंधक चन्द्रा से चिढ़ गये। एक विशेष सभा बुलाई गई। उसमें दुश्चरित्र अध्यापिकाओं को नौकरी से निकालने की चर्चा उठाई गई। आरम्भ के बहस को सुन कर पहले तो प्रधान

अध्यापिका को ऐसा लगा जैसे उस के भांडे फूट रहे हों। बेचारी अन्दर ही अन्दर बहुत डरी । परन्तु जब उसे पाता चला कि यह सब उसके नहीं, चन्द्रा के संबंध में कहा जा रहा है—तब उसके दम में दम आया। अब तो मानो उसकी सरस्वती खुल गई वह खूब बढ-बढ़ कर बोलने लगी। जब इस प्रसंग ने उग्र रूप ले लिया तब प्रबंधकारिणी समिति के सदस्य सेठ चन्दनलाल खड़े होकर अन्य समस्त सदस्यों को आश्चर्य मे डालते हुए चन्द्रा को एक वर्ष का समय अपना आचरण संभालने के लिये देने का प्रस्ताव किया।

सेठ चन्दनलाल एक रँगीले स्वभाव के व्यक्ति थे वह धनी थे और उन्हें समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। परन्तु उनके अंतरंग मित्रों के अतिरिक्त किसी को यह मालूम न था कि विद्यालय की प्रबधकारिणी समिति के सदस्य वह क्यों थे ? किसी असहाय अध्यापिका की निर्धनता अथवा विवशता का वह लाभ वर्षो से उठाने आ रहे थे। परन्तु उनकी रस वैचित्र्य की पिपासा निरन्तर बनी हुई थी। आज सहसा उसी की तृप्त का अवसर जब उसके सामने आया तब चन्द्रा को भी अपने चंगुल में फँसाने की वासना ने अपना सिर उठाया। उन्होंने इसीलिये बड़े निर्दोष और सदय भाव से अन्य सदस्यों से अपील की कि अभी चन्द्राकुमारी को विद्यालय से न निकाल घर उन्हें एक वर्ष का समय दिया जाय। यदि साल भर बाद भी उसके विरुद्ध शिकायत सुनाई दे तब उसे अवश्य निकाल दिया जाय। सब ने यह राय मान ली और सभा विर्सजित हो गई। पास वाले कमरे में बैठी चन्द्रा सब कुछ सुन रही थी। वह सेठ जी की कुख्याति से परिचित थी। उसे यह प्रस्ताव सुन कर संदेह हो गया। परन्तु वह कुछ बोली नहीं। वह मन ही मन घुलने लगी। गर्मियों की छुट्टियाँ आई। सब अपने-अपने घर चले गये। प्ररन्तु छुट्टियाँ बीतने के बाद भी चन्द्रा लौट कर न आई।

आदि और अन्त

प्रकृति का चक्र भी क्या अजीब है। वह ! न किसी की सुनता है, न समझता है ! सब अपनी ही धुन में चलता चला जाता है। सुबह, दोपहर, शाम, रात फिर सर्दी, गर्मी, बरसात और इसी प्रकार दिन महीने और साल निकल जाते हैं। रोज़ सुबह होती है और शाम होती है, रोजा रोज़ लोग काम पर जाते हैं, फिर लौट आते हैं, चिड़िया घोंसलों से उड़ जाती है फिर लौट कर आती हैं। प्रकृति का प्रत्येक प्राणी अपने नीड़ से प्रातः चला जाता है, फिर संन्ध्या को लौट आता है।......कोई खुश होकर, कोई दुःखी होकर।......परन्तु करीम बड़ी उत्सुकता से घर की ओर कदम उठाता हुआ चला जा रहा था। उसके घर को न तो महल ही कह सकते हैं, और ही झोंपड़ी। हाँ हम कोठरी जरूर कह सकते हैं क्योंकि वह ईंटों से बनी थी. झोंपड़ी तो घास-फूस से बनती है, मिट्टी से बनती है। झोपड़ी देहात में खुली स्वच्छ हवा में बनती है या शहर की बस्ती में बनती है।

करीम की कोठरी ज़िला शहादरे की गन्दी पतली गली के कोने में थी जहाँ तक पहुँचने के लिये रास्ता कुछ नहीं तो दस बार मुड़ता है।

......और इसी घर की ओर करीम लपकता चला आ रहा था, क्योंकि वहाँ उसकी इकलौती बेटी नजमा उसका इन्तजार कर रही थी और रोज ही करती रहती है। उसका स्कूल जो साढ़े तीन बजे छूट जाता है। घर पहुँचते-पहुँचते उसे चार बज जाते हैं फिर वह घर के सामने अपने बाबा का इन्तजार करती है। ......इन्ही, इन्तजार के क्षणों में वह पता नहीं क्या-क्या सोचा जाया करती थी। आज उसे अपनी अम्मी याद आ गई...... उसक ी वे छोटी-मोटी आँखे गोरे चिकने हाथ, उसको चिपटा-चिपटा कर प्यार करने का वह तरीका ......और सामने वाले घर में अपनी सहेली शान्ती का, उसकी माँ द्वारा चुटिया गुँथती देख कर उसे अपनी अम्मा का चुटिया गूँथना भी याद हो आया ।......उसकी माँ खाट पर बैठती। वह जमीन पर पटरा बिछा कर बैठ जाती और उसकी माँ बड़े प्यार से आहिस्ते-आहिस्ते [illegible]या गूंथती। कभी दो चोटियाँ गूँथती थी और कभी एक, परान्दी बांधती और कभी वह लाल रिबन। इन्हीं विचारों में नजमा खूब डूब चुकी थी जव सामने उसके बाबा मुस्कराते हुए आ खड़े हुए। फिर अपनी पगड़ी को उतार कर पास पड़ी हुई खाट पर रक्खा और आप भी खाट पर बैठ गये।

"बाबा सबके पास अम्मी है, मेरी अम्मी कहाँ है" कहती नजमा करीम की गोद में मुख छिपा कर रोने लगी।

"बेटा, तेरी अम्मी को अल्लाह ने बुला लिया।

"अल्लाह ने मेरी अम्मी को क्यों बुला लिया।"

"क्योंकि मैं उसे दिलोजान से चाहता था।

"तो तुमने उसे जाने क्यों दिया"।

"क्योंकि अल्लाह उसको मेरे से ज्यादा चाहते थे।"

"तो क्या अल्लाह मुझे नहीं चाहते ? नही तो मुझे भी बुला लेते ......फिर मैं अपनी अम्मी से लिपट-चिपट कर प्यार करवाती......

जैसे बड़े ईद पर किया था......याद है न बाबा ......हाय रे अल्लाह मुझे जल्दी से बुला ले"।

"नही बेटी, तू मत जा, नही तो मैं पागल हो जाऊँगा"। कहते हुए करीम ने नजमा को अपने सीने में छिपा लिया।

दुःखी से दुःखी मिले......परन्तु दुःख शान्त न हुआ। वह और भी धवक उठा। दस वर्ष की मासूम नजमा अपने बाबा से लिपट-लिपट कर, फफक-फफक कर रोने लगी ......यह देख कर करीम की भी आँखें छलछला आईं। कुछ देर आँसू बहते ही रहे ...जैसे दुःख पानी बन कर आँखों की राह अलग जा रहा हो परन्तु आँसू भी कब तक बहते...... वे रुक गये...करीम ने सोचा कि दो पैसे की जलेबी खरीद कर नजमा को बहलाया जाय...... जलेबी वाले की दूकान भी कोई दूर नही है और शाम के समय तो वह ताजी जलेबियाँ बनाता है......नजमा खाकर हँस देगी और अपनी अम्मी को भूल जायेगी। हाँ, बात तो ठीक है। जल्दी से करीम ने अपनी जेब में हाथ डाला तो वहाँ एक भी पैसा नही......उसे याद आया कि यह हफ्ता तो महीने का आखिरी हफ्ता है तो पैसे कहाँ से रहेगे। स्कूल की चपरासगीरी में २५ रुपये ही तो मिलते हैं...उस पर आज कल का मकान का किराया तो आधी तनख्याह ले लेता है। ......फिर आटा दाल तो भी जरूरी है...... तन ढकने के लिये दो हाथ कपड़ा भी चाहिए...... पता नहीं, ये हिन्दू पड़ोसी क्या करते हैं। उनके यहाँ तो साल में ३६५ तो त्योहार आ जाते हैं। यह दे, वो ले, साल भर चलता रहता है इसी लिये उनके बच्चे मरगिल्ले से हैं......मेरी नज़मा तो उनके तीन बच्चों के बराबर है।......अरे यह मैंने क्या कहा ? अल्लाह मेरी नजमा को नजर न लगे। ......मेरी निम्मी को भी तो नजर ही लगी थी...... जो देखता, उसकी खूबसूरती पर लट्टू हो जाता ......कोई काला

तिल लगाने को कहता ... कोई वलइयां लेता ......पर इससे क्या होता है —उसे नज़र लग ही गई ... बेचारी खाट पर पड़ गई...किसी की समझ में ही न आया कि मेरी निम्मी को क्या हो गया है पर मेरे पास पैसे ही कौन से थे जिससे मैं डाक्टरों की राय लेता .....जो हकीम वैद्य ने किया ठीक किया...... बेचारी सूख-सूख कर चल बसी और मेरे हवाले नजमा को कर गई ...... और कहा था "मेरी नजमू को सुख से रखना, रुलाना नही ... हाँ... रुलाना नही पर...पर मैं तो नजमू को रुलाता रहता हूँ... मासूम जान बेचारी का रो रो कर बुरा हाल हुआ जा रहा है बोले:—

"नजमू ओ नजमू अपने बाबा की तरफ देखो।"

"क्यों बाबा" नजमू ने जावब दिया।

"नजमू मैं तुम्हें प्यार से रक्खूँगा......तेरा निकाह कराऊँगा। तेरा शौहर आयेगा। वो तुझे उतना ही प्यार करेगा। जितना मैं तेरी..."

"फिर अल्लाह मुझे ज्यादा प्यार करेंगे और मुझे बुला लेंगे।'

"नहीं नही, तुझे नही बुलायेंगे ......तू मेरी है" घबरा कर करीम ने कहा।

"उहूँ मैं तो जाऊँगी......अपनी अम्मी के साथ"

करीम ने जल्दी से नजमा को उठाकर प्यार किया—"कितनी मिलती है मेरी निम्मी से ..... उसी की अमानत है न यह मेरे पास... आज मेरी निम्मी

करीम ने जल्दी से नजमा को उठाकर प्यार किया—"कितनी मिलती है मेरी निम्मी से......उसी की अमानत है न यह मेरे पास ......आज मरी निम्मी होती तो मेरी नजमा को माँ और बाप का प्यार मिलता......वह गरीबों में भी कोई कमी महसूस न करती...... और निम्मी समझदार भी तो थी। इन्ही २५ रुपयों मे, पता नही,

कैसे जतन से घर चलाया करती थी......उसने कभी ज्यादा पैसों की माँग नहीं की थी और महीने के आखिर में भी उसके बटुये में दो-चार पैसे पड़े ही रहते......और मैं तीसरे हफ्ते के बाद ही पैसे-पैसे का मोहताज हो जाता हूँ...और तो और उस मुए हलवाई का कर्जदार भी हो गया हूँ...इसलिए मैं अपनी नजमू को कुछ मिठाई भी नहीं खिला सकता।......बेचारी सूखी रोटी और दाल खाकर चुप हो जाती है......पर फिर भी मासूम है उसका जी मीठा खाने को ललचाता होगा। अल्लाह ने ऐसी खूबसूरत चीज मेरे गरीबखाने में क्यों भेजी है। इन विचारों में करीम डूबा हुआ था और बीच-बीच में नजमा के बाल सहला रहा था। नजमा भी अपने विचारों में डूब गई। तूफान के बाद शान्ति और शान्ति के बाद तूफान! यह प्रकृति का नियम है। करीम और नजमा अपने विचारों में डूब कर शान्त हो गये थे और इसी शान्ति को भंग कराने के लिये तूफान रूपी साबीरी हाँफता हुआ आ पहुँचा और बोला:—

"बाबा बाबा, मेरे अब्बा बुला रहे हैं तुम्हें।"

"क्यों साबीरी, बेटा खैरियत तो है।"

"नहीं बाबा, अब्बा बहुत बीमार हैं, कहते हैं नजमा के बाबा को पकड़ कर जल्दी ले आओ" हाथ पकड़ता हुआ साबिरी बोला।

"बाबा मैं भी चलूँगी।"

'तो कौन मना करता है नजमू मेरे घर चलने से।"

"अच्छा चलो-चलो नजमू, साबीरी चलो जल्दी चलो।"

करीम बड़े-बड़े डग भरता हुआ साबीरी के घर की ओर जा रहा था। दाहिने और बाईं ओर नजमू और साबीरी कुछ चलते से कुछ भागते से जा रहे थे, नजमू बड़ी खुश थी, क्योंकि रोज की तरह आज भी उसे शायद साबीरी के अब्बा लड्डू देंगे। परन्तु साबीरी घबराया

हुआ . ...उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा था। साबीरी को दु:खी देखकर नजमा को भी बुरा-बुरा लगने लगा।......और क्यों न लगे ! इन दोनों ने चार साल की उमर से इकट्ठे जीवन बिताया है। दोनों एक दूसरे के सुख-दु:ख के साथी थे। गरीबी मे दोस्ती की बड़ी जरूरत पड़ती है और गरीबों के हृदय में भी प्यार रहता है। देखते ही देखते तीनों रहीम के घर पहुँच गये।

"करीम तुम आ गये......मेरे करीम......मेरे पास बैठ जाओ करीम।"

"खैरियत तो है रहीम" रहीम के सिर पर हाथ फेरते हुए करीम बोला।

"नही करीम मैं अब अल्लाह के पास जा रहा हूँ।"

"या अल्लाह क्या बक रहे हो रहीम......तुम्हार पीछे साबीरी क्या करेगा।

"इसलिए तो मैंने तुम्हे बुलाया है......मेरी इस अमानत को तुम अपने पास रख लो और जब जी में आगे, नजमू से निकाह कर देना... यह लो मेरे घर की चाबी और यह नजमू के लिये साबीरी की माँ के रखे हुये यह गहने......। सीने पर हाथ रखते हुए रहीम ने पहले तो कराहा फिर करीम को पकड़ते हुए रहीम रोया और चिल्लाया और तड़पने लगा, मुख से हाय-हाय के सिवाय कुछ न निकलता। फिर शान्ति छा गई और शान्ति में मौन ने अपना ठंडा हाथ रहीम पर फेरा, उसकी आँखें पथरा गयीं। और दिल की धड़कन बन्द हो गई। सब रोने-चिल्लाने लगे परन्तु रोने-चिल्लाने से विदाई न रुकी और न रुकेगी। रहीम विदाई लेकर चल पड़ा। करीम की आँखें रहीम की लाश पर गड़ी हुई थीं......पास में नजमा और साबीरी हताश खड़े थे आँखों में आँसू छिपाये।

"या अल्लाह; तूने यह क्या किया...एक तो मेरे दोस्त का ले गये और मुझ गरीब पर साबीरी की परवरिश का भार भी छोड़ गये। गरीबी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है, जो उनके पीछे हाथ धोकर पड़ गये हो। या अल्लाह रहम कर।"

रहम माँगने से नहीं मिलती है और इसी कारण करीम को भी नहीं मिली।

कमरे में सब कुछ वैसा का वैसा था। रहीम की लाश,...साबीरी और नजमा ठगे से परन्तु एक दूसरे का हाथ पकड़े एक तरफ़ खड़े थे। रोना-धोना सुनकर पास-पड़ोस के लोग इकट्ठे हो गये। सब सिर झुकाये खड़े थे। देखते ही देखते मोलवी साहब भी आ गये, मस्जिद से पाक पलंग भी आ गया। आखिरी समय के बाद रहीम को सबने कब्रिस्तान पहुँचाया। रहीम की लाश को दफ़नाने के बाद करीम साबीरी को अपने घर लाया।

दिन बीतने लगे। नजमा और साबीरी साथ खाते, साथ खेलते साथ ही पढ़ने जाते......अब नजमा अकेलापन महसूस न करती और न ही अपने बाबा के लिए शाम को ठहरा करती। वह दोनों आपस में इतने मस्त थे कि उन्हें किसी तीसरे की फ़िक्र न थी। हाँ रोज रात को ही उन्हें बाबा की याद आती। क्योंकि वह दोनों करीम के दायें-बायें सो जाया करते। इसी तरह ये दोनों मासूम बच्चे पल कर सयाने हुये। सयाने होते ही सयानापन भी आ गया। बचपन की खेल शैतानियाँ अब दोनों की आँखों मे शर्म बनकर उतर आई करीम ने यह देखा और समझा और दोनों की निकाह कर दी गई। निकाह के बाद साबीरी ने पढ़ना छोड़ दिया और १५ रुपये पर एक गोरे के यहाँ बैरा बन गया। अब घर में दो की कमाई आती और घर का खर्च आराम से चलता।

......परन्तु जीवन का चक्र बराबर घूमता रहा है। जैसे नदी टेढे-मेढे रास्ते से कभी शान्त, कभी तूफानी वेग से बहती हुई आगे बढती है; उसी तरह जिन्दगी में भी तरह-तरह की तबदीलियाँ होती रहती हैं। साबीरी के गोरे साहब की तबदीली होने से साबीरी बेरोजगार हुआ और वह पलटन मे भरती होकर विदेश चला गया था। साबीरी खाँ अपनी प्यारी नजमू को छोडकर जाना तो नही चाहता था, परन्तु पेट की आग क्या कुछ नही कराती। घर मे पैसे नही थे......साबीरी के पास इलम न था तो भला वह कैसे, किस तरह दो जान के लिये रोटी लाता। परन्तु ऐसे लोगो के लिये एक आश्रम खोला था सरकार ने वह था भरती घर......जहाँ हजारो की तादात में गरीब, धन के गरीब, ममता से हीन, भरती, किए जाते हैं और गरीब भी अपनी जान की बाजी लगाकर कुछ रुपये घर भेज कर बडे खुश होते थे। यही हाल साबीर खाँ का भी था। वह नजमा को छोड कर जाना नहीं चाहता था, क्योकि वह माँ बनने वाली थी, परन्तु फौजी हुक्म यह सब नही देखना......आर्डर मिलते ही सब कुछ छोडकर जहाँ भेजे, जाना पडता है, साबीरी खाँ को बर्मा के मोर्चे पर भेजा गया और इधर करीम इस दुनिया से चल बसा। कुछ ही दिनो बाद नजमा माँ बनी। उसकी गोद मे साबीरी की अमानत खेलने लगी। नजमा भी साबीरी के पत्र के भरोसे दिन काट रही थी। परन्तु गरीबो के जीवन मे चैन कहाँ............और कही चैन दिखाई भी पड जाय तो शायद कयामत आ जाती है। दो साल तक तो साबीरी के पत्र और मनी-आर्डर ठीक से रहे...... ..परन्तु फिर पत्र आना बन्द हो गया! हाँ, मनीआर्डर ठीक वक्त पर आते रहे......फिर मनीआर्डर भी रुक-रुक कर आने लगे। रुक-रुक कर मनीआर्डर आने के कारण नजमा के

मन में तरह-तरह के ख्याल दौड़ने लगे......' क्या वह किसी औरत के पंजे में फँस गए हैं......क्या वह मुझे भूल गए हैं......कहीं बीमार तो नहीं हैं......बीमारी में शायद तनख्वाह भी नहीं मिलती...... और कुछ मिलता भी होगा तो इधर-उधर के खर्चों में खत्म हो जाता होगा......हो सकता है वह कैदी होकर हमारे दुश्मनों के डेरे में पड़े हों... . कहीं लड़ते-लड़ते अपनी जान पर......नहीं अल्लाह ! नहीं......मुझ पर रहम कर......या अल्लाह रहम कर......मैं कहीं की नहीं रहूँगी......उनके बिना मैं जी नहीं सकती और मेरे बिना उनकी इस अमानत की परवरिश नहीं हो सकती......

इन्हीं विचारों में नजमा के दिन और रात कटने लगे ......न वह ठीक से सो ही पाती थी और नहीं ही खा-पी पाती थी। न किसी से बोलना हँसना। पड़ोसिनें भी इसके इस वर्ताव से ताज्जुब करती थीं। कुछ महीने और कटे ......मनीआर्डर आना बिल्कुल बन्द हो गया। नजमा ने खाना-पीना बिल्कुल छोड़ दिया, राशन का गेहूं मंगाने के लिये पैसे कहाँ से आते। बिना अन्न के शरीर दुर्बल हो गया फिक्र ने दिमाग को कमजोर बनाया। इधर-उधर की बीमारियों ने इस कमजोर शरीर को अपना शिकार बनाया और नजमा बीमार रहने लगी । पास-पड़ौस की औरतें कभी आ जाया करतीं थीं। दवा का इन्तजाम भी कर जातीं ......परन्तु जब उन्हें पता लगा कि नजमा को तपैदिक है तो सब ने आना छोड़ दिया। बिना सहारे के कौन सहारा देता है।

एक दिन अचानक अस्पताल की गाड़ी आई और नजमा को तपैदिक के अस्पताल में ले गये और उसकी बच्ची को अनाथालय में दाखिल कर दिया गया।

नजमा अस्पताले में, साबीरी खाँ शायद वर्मा के मोरचे पर और दोनों

की स्मृति अनाथालय में। जहाँ न उसे माँ का प्यार मिल सकता है न बाप का, जहाँ पर वह 'फलां नम्बर बच्चा' के नाम से पलती रहेगी। न कोई उसके रोने में दुःखी होगा और न हँसने में सुखी। बड़ी होकर न उसके मन में किसी के प्रेम, उसको यह असार संसार खाली और सार-हीन लगने लगेगा। वह शायद अपना नाम भूल जायगी।

प्रवाह और द्वीप

"ऋजु, ओ ऋजु, सुन रही है या नहीं ? क्या आऊँ तुझे दो-चार चपत लगाने को ? कहाँ चली गई है ? कम्बख्त सुनती तक नहीं ! चुड़ैल, तेरा दिमाग ठिकाने लगाती हूँ आकर, ठहर तो"...कहती हुई कमला देवी हाथ में एक सोंटी लिए बड़े वेग से आँगन की ओर लपकीं।

ऋजु अपनी छोटी बहन इन्दु और पड़ोस की सहेलियों के साथ गुट्टे खेल रही थी। ऋजु को गुट्टे खेलना देखकर कमला देवी का पारा चढ़ गया और देखते ही देखते ऋजु की पीठ पर चार-पाँच सोंटियाँ बरस पड़ीं। ऋजु को मार खाते देखकर इन्दु और दोनों सहेलियाँ भाग खड़ी हुईं। यह बात नहीं थी कि ऋजु को यह पता न था कि दंड उसे किस अपराध में दिया जा रहा था। वह जमीन पर पड़ी तड़प-तड़प कर रोने और चीखने लगी। कुछ क्षण तक कमला देवी चुप खड़ी-खड़ी ऋजु का रोना, चीखना देखती रहीं फिर दो-चार चांटे और भी रसीद करती हुई बोलीं—"कानों में क्या रुई ठूंसे रहती है ? जब मैंने बुलाया था तब

क्यों नहीं सुना, मानो मिजाज आसमान में चढ़ गए हैं। याद रखना एक-एक हड्डी-पसली दुरुस्त करके रख दूँगी।"

ऋजु ने रोते-रोते उत्तर दिया—"तो क्या इनने के ही लिए इतनी मार ! तुम्हें कोई इस तरह मारे तब पता लगे।" यह सुनकर कमला देवी दो-चार तमाचे और जड़कर अन्दर चली गईं और ऋजु वहीं आंगन में बैठी बिलखती रही। बीच-बीच में वह अपनी पीठ और पैरों की चोटों को सहलाती जाती।

दिल्ली का शहर, चाँदनी चौक की पतली गली, ट्रामों की घड़घड़ाहट और वह ऋजु का छोटा-सा घर जहाँ इस समय वह पिछले एक घंटे भर से बैठी अपनी माँ से खाई मार चोट को सहला रही थी। यह छोटा-सा नीम जो सदा मौसम आने पर अपनी पक्की निबोरियों से ऋजु का आँगन भर दिया करता है और जिसकी की मोटी शाखों में ऋजु हमेशा से सावन के झूले डालनी आई है और पैंगों को बहुत ऊँचे बढ़ते हुए उसने इतने गीत गाये हैं जितनी कि इस नीम की निबौरियाँ भी नहीं होंगीं।

होली पर नीम नंगा हो जाता है और बरसात में नीम की जड़ों में से छोटे-बड़े काले-काले कीड़े-मकोड़े निकलकर पूरा आँगन भर दिया करते हैं। ऋजु को वह चींटा अभी तक याद है। तब वह बहुत छोटी थी और उस बदतमीज ने उसकी नाजुक बचकानी अंगुली में खेल खेल ही में अपनी दो तेज सुई की तरह काले सडसी जैसे डंक गड़ा दिये थे और उसमे से उसका मुलायम गोश्त पकड़कर खीच लेना चाहता था। तब वह चीख पड़ी थी......।

आज वह उसी नीम के पेड़के नीचे एक घंटे से रो रही थी और अन्त में वहीं लेटकर वह न जाने कितनी ऊल-जलूल बातें सोच रही थी। घर से भाग क्यों न जाऊँ। परन्तु नहीं, भागने से क्या फायदा ? उसे आत्म-

हत्या कर लेनी चाहिए, परन्तु आत्महत्या क्या है ? लोग गले में रस्सी बाँधकर शायद झूल जाते हैं और फिर सब अपने आप ठीक हो जाता है......!

मगर ना बाबा ! जाने कैसा-कैसा तो दम घुटता होगा। सब से अच्छा तरीका तो है कि जमुना में कूद पड़ना। घर से वह कोई भी बहाना बनाकर अभी चल देगी और लाल किले की बगलवाली सडक पर चली जायगी, फिर न तो कोई माँ होगी और न उसकी मार ही होगी।

परन्तु आज वह आत्महत्या न कर सकेगी क्योंकि माँ के उस लोहे के बक्से में रखी हुई फ्राक भी तो उसे पहननी है जिसे उसने कितना लड़-झगड़कर और बापू से कह-कहकर बनवाया था। कैसा खूबसूरत उसका केवड़ई रंग है और उस पर बने हुए वह छोटे-छोटे कासनी के फूल। माँ की जिद है कि वह उसे दीवाली पर ही पहनने को देंगी और दीवाली को अभी पूरे दस दिन बाकी थे। यों तो वह इस फ्राक को बिना पहने भी जमुना में कूद पड़ सकती है परन्तु वह जानती है कि उसकी छोटी बहन इन्दु उसके न रहने पर वह फ्राक पहनेगी और जिसको कपड़े पहनने का तनिस भी शऊर नहीं है। अस्तु आत्महत्या फ्राक पहनने तक के लिए टल गई।

× × ×

ऋजु अब नौ वर्ष की थी। वह थी कलेक्टर सोमनाथ की पहली संतान। जब उसका जन्म हुआ था तब सोमनाथ की अवस्था ३८ वर्ष की थी। तब उनका विवाह हुए १४ वर्ष हो चुके थे तथा सोमनाथ की पत्नी कमलादेवी को बिना बच्चों की अपनी ज़िन्दगी की गाड़ी भारस्वरूप हो गई थी।

एक दिन सोमनाथ के बाहुपाशों के आबद्ध होकर बैठी हुई उनकी

चौदह साल पुरानी पत्नी ने एक चातुर्दवर्षीया मुग्धा के समान आरक्त कपोलो सहित तथा आँखे नीची करके कहा—"जानते हो एक खुश खबरी ?"

कमला की ठोढी ऊँची करते हुए सोमनाथ ने पूछा—"क्या बात है कमला ? क्या फिर कोई सतान का बहम लेकर आई हो ?"

......और कमला के हँसते हुए ओठ पथराकर वैसे ही बन्द हो गय जैसे कटे हुए दो बादल आपस म मिल गए हो ।

"बहम ?"..... कमला ने यह शब्द अपने पति की आँखो मे अपनी आँखें डालते हुए कहा । वह घायल शेरनी की भाँति अपने नारीत्व के इस अभाव को, जिसने उसे अपूर्ण बना रक्खा था, चाहे एक-एक बार के लिए ही सही, मगर नोच फेकना चाहती थी, झसझोर देना चाहती थी ।

"और नही तो क्या कमला । जब हम दोनो की जिन्दगी मे तीसरा प्राणी आने को तैयार ही नही है तो फिर उसके आगमन की बात को लेकर बार-बार चौक उठने का नाम बहम नही तो और क्या है ?"

कमला की प्रभात सी ताजी-ताजी आँखो मे न जाने कहाँ से फिर एक बार निराशा छा गयी ।

"हाँ, यह आप ठीक ही तो कहते हैं। जब पिछले चौदह सालो मे कोई नही आया तो अब क्या आयेगा ।"

मगर वह 'कोई' आया और वह थी ऋजु ।

× × ×

...और फिर घर मे रौनक आई और जीवन के बाग मे एक हसता हुआ फूल उग आया । ऋजु सितारो की जगमगाहट लेकर आई, कलियो की महक बिखेरनी हुई आई, जीवन के लिए एक नई आ॰ग लेकर आई ।" ...तरह-तरह के अरमानो को पूरा करने का समय आ गया ।...कमला देवी कुछ-कुछ सुख और ढेर-से कौतूहल मे खोई-सी रहती । उन्हे लगता

जैसे ऋजु के रूप वे स्वयं ही दुधमुँही शिशु बनकर अपने आँचल में आ गई हो।

लोरियों ने ऋजु को गुदगुदाया। किरणों ने अपने कोमल हाथों से उसे थपथपाया और वह धीरे-धीरे सोमनाथ दम्पति की पुलक में पलने लगी वह बढ़कर तीन साल की हुई। उस में माँ और बाप का प्यार-दुलार इतना समा गया कि वह बाहर होकर उसको औरों के स्नेह के लिये आकुल करने लगी।

वह रुई या कपड़े के खरगोश, बिल्ली में अपने ही रूप देखती। रंगीन रबर का फुटबाल. रबर की छोटी बोलती चिड़िया उसे कुछ-कुछ यह अनुभव कराते कि मैं खिलौना हूँ और ऋजु कोई और। पहले तो उसे अनुभव हुआ मिटुन के आ जाने से उसे माँ-बाप के अनवरत, निरन्तर और निर्बाध दुलार से मानो कुछ अवकाश मिल गया हो—उसे मानो प्यार की पात्री बने रहने से थोड़ा विश्राम मिला हो, परन्तु जब उसने देखा कि यह नई व्यवस्था क्षणिक नहीं, स्थायी है। चली ही जा रही है तब उसे यह बात बहुत अच्छी न लगी। क्योंकि उसके मन में तो वह बात समा गई थी कि सब उसे, केवल उसे ही, चाहें परन्तु मिटुन के आ जाने से उसे ऐसा लगा मानो लोग अब उसे नहीं चाहते। इस धारणा के फलस्वरूप वह मानो कुछ भीतर ही भीतर सिकुड़-सी गयी।

मिटुन रोता अधिक था, वह हँसती अधिक थी। उसको माँ-बाप तीन साल पहले से जानते हैं और इस मिटुन को तो अभी कुछ ही महीनों से जानने लगे हैं। वह मिटुन के साथ ही खेलती-खाती फिर भी माँ-बाप की नजरों में मिटुन ही प्रधान था—सब बातों में आगे।...... बस, यही सब वह सोचती रहती; माँ-बाप से इसके लिए बुरा भी मानती और मौका मिलने पर मिटुन पर अपना क्रोध उतारने के लिए उसे कभी दाँतों से काट लेती, कभी कसके उसे चुटकी भरती, फिर भी

उसका क्रोध खिसखिसाया-सा ही रहता—अतृप्त !

धीरे-धीरे मिटुन पर माँ-बाप का प्यार बढ़ने और ऋजु पर कम होने लगा। वह निश्चय कर चुकी थी कि इसके लिए वह बदला लेगी और कसकर लेगी......और खेलने-कूदने आदि की भाँति मिटुन को पीटना और परेशान करना उसका एक काम बन गया। मिटुन चीख उठा करता, चीख सुनकर माँ भी चीखतीं और पिताजी तो बौखला ही उटते। अब उसके मन में मिटुन ही नहीं उसके माँ-बाप भी उसकी घृणा के पात्र बन गये।

एक दिन ऋजु सदा की तरह खिलौने में खोयी हुई खेल रही थी कि भूल से या जल्दी में उसने बल्ले से लकड़ी का गेंद जो उछाला तो वह मिटुन के पैरों में जा लगा। वह तो खेल में मग्न थी, उसे भला क्या पता—परन्तु जब उसके चिकने-चिकने मासूम गालों पर माँ की उँगलियों से तेज आँच-सी, मोटी-मोटी लकीर-सी खिच गयी तो तब उसने पहली बार आखें मूँदकर महसूस किया कि चोट प्यार से भी अधिक शीघ्र समझ आ जाती है। उसकी बडी-बड़ी पलकें काँप रही थीं और होंठ बुदबुदा रहे थे। फिर वह चीखती-चिल्लाती एक ओर बढ़ गई। माँ को तो जैसे पता भी नहीं लगा कि उन्होंने ऋजु को पीटा हो। वह मिटुन को गोद में लिये दूसरी ओर बढ़ गयी। ऋजु समझ गयी और खूब समझ गयी कि मिटुन को पीटना एक तरह से माँ को भी पीटना है—उसे रुलाना है।

× × ×

ऋजु अब एक तरह से हर वक्त खीझी-खीझी ही रहती। न वह माँ से मिल पाती, न पिता से। मुहल्ले के लड़के उसे 'चोर' 'सिपाही' खेलने के लिये प्यार से बुलाते तो वह चौंक-सी जाती। अब वह प्यार में जैसे कोई पीड़ा, एक टीस-सी, अनुभव करती। वह मिटुन को देखते ही आग हो जाती। जहाँ भी कहीं भी मिटुन को पाती, तुरन्त दो-चार

चपत जड़ देती। घर में मिठाई आती, खिलौने आते या सचित्र किताबें आतीं तो वह उन्हें फेंक तोड़ देती या फाड़ डालती यद्यपि वह यह खूब जानती कि इन सब में उसका भी हिस्सा था।

ऋजु लोगों को बड़ी मीठी लगती थी, प्यारी लगती थी। वैसे तो वह शरीर थी परन्तु शायद यह शरारत ही उसकी मिठास हो। वह चाहे जिससे भी स्नेह कर परन्तु ज्यों ही कोई दूसरा उससे स्नेह करता वह बिगड़ पड़ती। मुहल्ले के सभी लड़के उसकी दृष्टि में मिटुन के प्रतीक थे, उन सबके माँ-बाप उसे अपने माँ-बाप के समान लगते।

ऋजु अब वैसे बच्ची न थी लेकिन वह तो अपने को निरी बच्ची ही समझती-सोचती, उसे लोग अब न जाने क्यों सयानी कहने लगे हैं। वह मन में कहती, शायद जिस बच्चे को लोग प्यार नहीं करते उसे सयानी कह-कह के टाल देते हैं। अब उसे भी मिट्टी के खिलौने मिट्टी के ही मालूम पड़ते। उनके साथ वह चल न पाती, हँस न पाती, उन्हें प्यार न कर पाती। उसकी फ्राक भी अब उतनी छोटी न बनती। उसकी खाट बदल दी गयी है। अब वह कमरे में अकेली सो सकती थी, उसे डर न लगता था—परन्तु अब घरवाले उसकी आयु के बारे में ही बातें कहते या ऐसे प्रबन्ध करते तो उसे बहुत बुरा लगता......क्योंकि मिटुन अभीं तक माँ के ही साथ सोता है, पिता की चौड़ी छाती पर खेलता है और उनकी ऊँगुलियाँ पकड़कर लड़खड़ाता हुआ चलता है।

× × ×

इसी प्रकार के वातावरण में डूबती-उतराती ऋजु स्कूल में भर्ती कर दी गयी। यह बात उसे बहुत ही बुरी लगी। उसकी रोने की इच्छा तक गले में घुट-घुटकर खो जाती। उसे ऐसा लगता मानो वह अपने माँ के दिल से ही नहीं घर से भी निकाल दी गई है। वह रोज सवेरे उठती और स्कूल जाने का स्मरण आते ही खूब रोती परन्तु मां की डांट-फट-

कार से उसे स्कूल तो जाना ही पड़ता.........और वह भी अकेले। स्कूल की महरी, जो रोज सवेरे आकर मां से हंस-हँसकर बातें कर जाया करती थी, उससे उसे चिढ-सी हो गयी थी ......उससे वह कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहती थी उसके संरक्षण में स्कूल जाता उसे तनिक भी न सुहाता।

ऋजु की और भी सहपाठिनें स्कूल आतीं—बन-ठन कर, सजकर परन्तु वह अपने सादे कपड़ों में सिमटी-सिमटाई क्लास के कोने में जाकर बैठ जाती। उस समय उसे पिताजी का वह वाक्य कानों में गूँज उठता—"अरे सुनती हो ! तुम ऋजु के लिये अच्छे अच्छे फ्राक क्यों नहीं सिलवातीं ? यह वाक्य याद आते ही उसे माँ से और भी घृणा हो जाती ......और माँ से पीछा छुड़ाने के न जाने कितने ऊलजलूल विचार उनके मन मे आते। वह इन विचारों से लड़ती भड़ती भी परन्तु इससे उसके मन में कोई खास परिवर्त्तन न होता। इसी बीच ऋजु की मैत्री उसके पास बैठने वाली सहपाठिनी मंजु से हो गयी। मंजु रोज स्कूल के दरवाजे पर मोटर से उतरते ही उससे लिपट जाती। आरम्भ मे वह समझ न पाती थी कि अखिर मंजु उसे क्यों इतना प्यार करती है। परन्तु अगाध स्नेह के समुद्र में से अभी तक न कोई निकल पाया है और न कोई निकल पायेगा। ऋजु भी अपने आपको भूलकर उसी में डूब गयी।

ऋजु और मजु अब दो होते हुए भी एक थीं। वह दोनों साथ उठती-बैठती, खेलती, पढ़ती, रोती-हँसती 'अध्यापिका जी भी अब इन दोनों को बहुत चाहतीं। प्रगति का यही क्रम है कि जहाँ कोई एक से दो हुआ वहाँ पर फिर तीसरा, चौथा और पता नहीं और भी न जाने कितने आ मिलते हैं। इसी कारण क्लास में ऋजु और मंजु की धाक बैठ गयी थी। पढ़ाई में, ड्रिल में स्कूल के और भी अन्य कार्यों में क्लास

की सभी लड़कियों पर इन दोनों की लीडरी चलने लगी...और इस प्रकार वय, विचार और भावों में अन्तर आने के साथ-साथ उनकी शिक्षा की गति में भी खासा अन्तर आ गया। धीरे-धीरे सब दसवीं कक्षा में पहुँची।

......तो एक दिन वह समाचार सुनती है कि मंजु का विवाह होने वाला है। वैसे ऋजु बराबर ही सुना करती थी कि इसका विवाह हुआ, उसका होने वाला है, उसका हो रहा है; परन्तु ऋजु के कानों में यह बातें ठहर नहीं पातीं। परन्तु आज मंजु के विवाह का समाचार सुनकर तो उस पर पहाड़-सा ही टूट पडा। उसके मस्तिष्क में प्रश्नों का एक चक्र घूम गया है।

"आखिर मंजु का विवाह क्यों, कब और किससे होगा? किसी से भी हो, पर वह होगा तो किसी मिटुन जैसे ही से............"

यह विचार आते ही वह दौड़कर मंजु के पास पहुँची और उसे देखते ही बोल पड़ी—"मंजु मंजु! अभी मैंने एक अजीव बात सुनी है।" मंजु तो सुनकर सकपका गयी। ऋजु की ऐसी तेज और कड़ी आवाज उसने आज पहली ही बार सुनी थी। मंजु चुपकी रह गयी और ऋजु बोलती ही रही......

बताती क्यों नहीं, क्या बात है? क्या तुम्हारे माँ-बाप तुम्हें नहीं चाहते जी...क्या तुम्हारा भी कोई दू......"

बस "दू......" ही कहकर वह चुप हो गयी। वह आगे कुछ न कह सकी। यह उसे नहीं मालूम हुआ। बस, उसको जाने कैसे यह लगा कि आगे कुछ नहीं कहना चाहिये।

मंजु शरमाकर किसी तरह बोली—"जब तुम्हें कोई प्यार करेगा

तो तुमसे भी पूछूँगी यही बात।"......और इतना कहकर मंजु चुप हो गयी।

× × ×

दिन बीत गये। ऋजु स्कूल से कालेज पहुँची। वहाँ लड़कियों के समान भाव से रहने के कारण लड़कों की ओर मन कुछ मुड़ने-मुड़ने को होता। पर मन की इस मोड़ को महसूस करते ही वह और भी तन जाती।

कद और उसके गुणों के साथ-साथ उसके विचार भी परिवर्तित हुए। अपने को चंचल, शोख और शरीर दिखाने की उसकी लालसा वैसे खत्म हो चुकी थी। पर जब कोई उससे यही बात कह देता तो वह बहुत खुश होती। उसके सामने सदा यह समस्या रहती कि आखिर मेरे आकर्षण का विषय क्या है—किसे अपने आकर्षण का लक्ष्य बनाऊँ? किस पर अपनी शक्ति प्रयोग करूँ? परन्तु जैसे ही यह महसूस करती कि वह सचमुच अपने हृदय पर किसी का प्रभाव स्पष्ट अनुभव करती है तो उनका मन खोया-खोया-सा ही हो जाता। कभी-कभी ऐसा न होने पर उसे बुरा भी लगता—वह एक खालीपन महसूस करती और ठहर-कर देखती कि कोई फिर क्यों नहीं मुझपर आकृष्ट हो रहा है और तुरन्त जैसे लगता कि वह तो कईयों के आकर्षण की केन्द्र है तो फिर वह अपने आप में आ जाती, तन उठती।

वह सोचती, मिट्ठन एक लड़का है और वह एक लड़की। उसके और मिट्ठन के ऐसे भी और बहुत हैं। वह सोचती, वह अकेली मिट्ठन जैसों से कहाँ तक घृणा करे, वह अपनी थोड़ी ही छोटी बहन इन्दु को देखती।

वह तो इतनी घृणा न मिटुम से करती थी और न मिटुन के समान औरो से।

उसने तय कर लिया कि अब आगे ऐसा न होगा परन्तु ऐसा होता और बार-बार होता। जैसे ही उसके सामने कोई पड़ जाता, वह उससे घृणा करने का एक खिसियाया-सा नाटक खेल जाती। हाँ, बाद में अपने ऊपर जरूर गुस्सा करती और मन ही मन कहती, तुम न तो इधर ही रहती हो और न उधर। धीरे-धीरे उसके मन की स्थिति कुछ इस प्रकार की हो गई कि अनुराग और घृणा दोनों में से उसके लिये कौन आवश्यक है, यह सोचने मे भी उसे तकलीफ होती। वह अनुराग को चुपके-चुपके ग्रहण करती और घृणा को अपनी चिरसचित प्रवृत्तिवश। अब निश्चित रूप से घृणा मन से हटकर उसकी आँखों मे चली गई और अनुराग आँखो से हटकर मन में उतर गया। मन का अनुराग एकान्त नही मानता और न आँखो की घृणा ही किसी की आँखों में पड़कर उसके मन मे विराग छा देती—इसके फलस्वरूप उसका स्वभाव, उसका व्यवहार बहुत-कुछ बदल गया।

एक दिन वह जरा पहले यों ही अपने क्लास की डैक्स पर पहुँची तो वहाँ देखा—'ऋजु, मेरी ऋजु लिखा था। दो ऋजुओं के बीच में 'मेरी' शब्द पढ़कर उसे अपनी दोनों आँखों के बीच जैसे उस 'मेरी' शब्द का कस लेने की इच्छा हो आई हो।

और धीरे-धीरे उसने अपने को किसी की 'मेरी' महसूस किया। उस क्षण से वह अपने को 'मेरी ऋजु' समझने लगी। उसका कोई काबू न चलता; वह बराबर यही सोचती—बस सोचती!

'वह जाने कौन है? कैसा है? अरे वही जिसकी मैं हूँ! मैं कैसे उसकी हो गई हूँ? मैं किसी की कोई क्यों हूँ! बिना पूछे, बिना राय

लिए जब कोई मुझे अपना बनाले तो किया ही क्या जाय ?

पर जब ऋजु को ख्याल आया कि उससे जबरदस्ती प्रेम करवाया जाय तो उसकी वह पुरानी घृणा फिर से हरी हो आई। दूसरे दिन वह जरा देर से क्लास में पहुँची तो एक अल्हड़-सी मुस्कराती हुई शक्ल ने आकर कहा—मिस ऋजु"।

उसने सुनकर भी अनसुनी कर दी। फिर आवाज आई—"मिस ऋजु ! आप......कल......" सुनते ही उसके मुख पर लाली दौड़ गई, क्रोध उसके मुख पर उभर आया और वह कह पड़ी—"जी, कल मैं पहिले नही आई थी...पर..." बात काटते हुए वह नवयुवक बोला— "तब फिर आप क्यों नाराज हो गई ?"

यह सुनते ही तो वह बरस पड़ी—"आखिर यह हरकत किया है ? आप चाहते क्या हैं ? चले जाइये यहाँ से नहीं तो मैं प्रिंसिपल साहब के..."

"जी, मैंने आपके डैस्क पर जो भी कुछ लिखा था उसके लिये माफी माँगने आया हूँ। अगर आप माफ कर दें तो......"

"बड़े बेशर्म हैं आप, आप जा रहे हैं या नही ?"...और लड़का सिर झुकाकर एक ओर को चल दिया। जैसे ही वह आँखों से ओझल हुआ ऋजु सम्हली और खूब सम्हली, पर सम्हलते ही उसे अपने मन में से दो ध्वनियाँ सुनाई दीं—एक कहती—"बहुत अच्छा हुआ !...यह मिट्ठुन जैसे लड़कों को तो इसी तरह दुत्कारते रहना चाहिये—"और दूसरी कहती—"यह तूने क्या किया ? यह लड़का तुझे प्यार करता, तुझ से बातें करता और फिर......फिर विवाह होता—मंजु की तरह।"

इसी अन्तर्द्वन्द्व को अपने अन्दर सम्हालते, इन दोनों ध्वनियों में से

कौन उचित और कौन अनुचित है इसका निर्णय करने की चेष्टा असफल चेष्टा करती-करती दूसरी ओर चल दी।

× × ×

एक दिन ऋजु बरामदे में चारपाई पर मुँह ढांके पड़ी थी कि सुना—पिताजी किसी से कुछ पूछ रहे हैं। पिता जी की आवाज सुनते ही वह उठकर अक्सर दूर चली जाती थी परन्तु उस दिन वह लेटी रही। उठकर चली जाने के विचार का एक झोंका तो आया। पर न जाने क्यों वह फिर लेटी ही रही। उसने सुना, पिताजी कह रहे हैं—सही है कि ऋजु भाग्यशालिनी है, पिता-माता और भाई के लिये साक्षात् लक्ष्मी जैसी है, पर ज्योतिषी जी, यह तो बतलाइए इसका विवाह कब होगा।

ज्योतिषियों के बारे में ऋजु ने अपनी सहेलियों से बहुत कुछ सुन रक्खा था। आज अपने घर में अपने ही बगल के कमरे में, अपने ही बारे में बातें करते हुए ज्योतिषी को सुनकर उसके हर्ष और उत्सुकता की सीमा न रही। ज्योतिषीजी सामने एक कागज रखे कुछ सोच रहे थे। उसने छिप कर, बड़ी चालाकी से एक बार आँख उठाकर यह सब देख लिया। उसके पिता को शायद यह न मालूम था कि बरामदे वाली चारपाई पर ऋजु पड़ी है। उसने सोचा—"मैं यहाँ पड़ी हुई हूँ परन्तु पिताजी को मेरा ध्यान कहाँ। उनके लिए भला में कौन हूँ? मैं न मिटुन हूँ और न इन्दु ही। इनमें से कोई उन्हें दिन भर को न दिखाई दे तो छटपटा उठें। मैं और ......यहीं पास की पास पड़ी हूँ और... ......"

ज्योतिषी फिर बोले—"विवाह तो कुछ कठिन-सा लगता है।"

बाद को ऋजु ने ज्योतिषी का यह वाक्य "विवाह तो कुछ कठिन-

सा लगता है" मन ही मन न जाने कितने बार दोहराया होगा...। कई बार तो वह उसके गले में हँसता-सा बोझ हुआ। कमला देवी इच्छा रहते हुए भी ज्योतिषी का यह वाक्य भुला न सकी। पिता का निर्णय था, न कि जब विवाह होना कठिन है और उसे भाग्यशालिनी होना भी बदा है तो इसे अपने पैरों पर क्यों न खड़ा होने दिया जाय। और, जिस दिन ऋजु अपने पैरों पर खड़ी हुई वह डाक्टर थी।

× × ×

एम० बी० बी० एस० की डिगरी पाने के बाद उसे पहले-पहल एक चैरेटी हास्पिटल में नौकरी मिली। वहाँ वह महिलाओं और बच्चों के विभाग की देखरेख करने लगी। पहले दिन जब ऋजु उस कुर्सी पर बैठी तो उसे अजीव-अजीव-सा लगने लगा; उसे ऐसा लगा जैसे वह एक जीवन को समाप्त करके दूसरा शुरू कर रही है। इस विचार के आते ही उसके मुख-मंडल पर प्रसन्नता की रेखा खिच गई थी। क्यों न खिचती ? वह अपने आने वाले जीवन को सुखमय बनाने का स्वप्न जो देख रही थी। इस विचार के साथ-ही-साथ पिछले जीवन की कड़वी स्मृतियाँ भी फिल्म के चित्रों की तरह एक के बाद एक उसके सामने आती गईं। उस सुअर मिटुन के इस दुनिया में आने से उसका अपने माता-पिता की उपेक्षा सहना। उमी के कारण पिता का उसके लिए अच्छे कपड़े न सिलवाना। माता का उसे बात-बात पर पीटना। प्यारी सहेली मंजु से सदा के लिये बिछुड़ना—उफ ! कोई उसका दूल्हा बन बैठा।

उस ज्योतिषी की भविष्य-वाणी के बाद पिताजी का उसे इंदौर मेडिकल कालेज में, एक छोटे कालेज में भरती कराना—जहाँ डाक्टर

सिन्हा-जैसे प्रोफेसर थे ! वैसे तो बड़े सूटेट-बूटेड, नारी को देखते ही विलायती नखरे दिखाने में भी निपुण परन्तु रोज क्लास वह भी तो कह दिया करते—"ग्रेज ऐनाटोमी लड़कियों के बस की नहीं है !"

ऐसे ही विचारों में हास्पिटल में उसका पहला दिन कटा । परन्तु दूसरे दिन से उसका जीवन-क्रम कुछ बँध-सा गया । रोज सुबह आउट-डोर में मरीजों को देखना वार्डों में राउंड लगाना, इन्जैकशन देने आदि । परन्तु इन सब व्यस्तताओं के होते हुए भी यह ऑपरेशन थियेटर से न बच सकी । एक दिन उसे वहाँ जाना ही पड़ गया । ऑपरेशन-रूम से बाहर आकर उसने पहले वाश-बेसिन में हाथ धोये, फिर अपना ऐपरन खोलते हुए, जिस पर कि हल्के खून के छींटे बिखरे हुए थे । यह उसका पहला ऑपरेशन था ।

पीछे से डाक्टर नीरज ने हँसते हुए कहा—"कांग्रेचुलेशन्स फार दी फर्स्ट सक्सेसफुल ऑपरेशन ।"

सुनते ही उसके थके हुए गोरे गालों पर छाई परेशानियों की श्यामता को लज्जा की लालिमा ने आकर बरबस हटा-सा दिया । जिस समय पैर में फँसे हुए उस बुलेट को वह निकाल रही थी, उसकी ताकत ने जावब दे दिया । माथे पर पसीने की बूंदें वैसे ही छा गई थीं जैसे ठंडे जल के ग्लास पर भाप की बूंदें । नीरज ने ऐन वक्त पर अपने लैन्सेट का सहारा दिया और बुलेट बाहर ।

वह बोली—"नो डाक्टर, इट वाज यू हूँ मेड इट सक्सेसफुल ।"

"आपकी कृपा है । पर चाय तो पिला रही हो न ? नहीं तो आज शाम के चार बजे में आपके घर पर धरना ही देकर बैठ जाऊँगा ।"

ऋजु हँसती हुए बोली—"जी, मेरा अहोभाग्य पर आज नहीं ।"

"पर-वर मै नहीं जानता। मै तो आज ही आऊँगा और ठीक चार बजे।"

"फिर जैसी आपकी इच्छा। आवश्य आइए।"

ऋजु जानती थी कि नीरज का उसकी ओर झुकाव है,, वह उससे प्रेम करना चाहता है? बेबकूफ उसको पता नहीं कि मैं अपने से किसी को कभी प्रेम नहीं करने दे सकती। ओर प्रेम करके होगा क्या? विवाह होना तो कठिन है—"नीरज घनिष्ठता चाहता है परन्तु क्यों? यह ऋजु को मालूम है। वह है कि नीरज को अगर एक बार बोलने का मौका भर दे दिया गया तो उसके हृदय की वीणा झंकृत हो उठेगी—किसी तीव्रता से, इसका अनुभव उसको है। वह उसे जानती है और इसीलिए वह उसे बजने नहीं देना चाहती। उसे भय है कि उस वीणा की तीव्र परन्तु मधुर झंकार में कही वह .....।

नीरज आत्मविभोर हो जाना चाहेगा और वह जक ऑपरेशन करते समय भी संयत नही रह सकता तब फिर दूसरे अवसरों की तो बात ही क्या है? परन्तु आत्मविभोर होने में खतरा है! संज्ञाहीनता है!! बहाव!!! संयत रहते हुए आदमी किसी विषय को तौल सकता है, किसी बात को ज्यों-का त्यों समझ सकता है, समस्या का उचित मूल्यांकन कर सकता है! जिन्दगी संयत मन का व्यापार है; आत्मविभोर प्राणी की कल्पना नही।

× × +

चाय की टेबिल पर संध्या समय नीरज और ऋजु बैठा है एक नारी के समीप—सुगन्धित, कोमलता से भरे तथा हृदय में भावों का तूफान उठाने वाले उस वातावरण में, जहाँ का एकान्त तोड़ने वाले केवल दो

प्राणी थे—ऋजु और वह। अपने को वह संभाल नहीं पा रहा है। सन्तुलित चेतना और संयत मनवाली ऋजु, किसी भी प्रकार अपने को असंयत नहीं कर पाती !

पता नहीं नीरज सोच क्या रहा है। ऋजु तो मन में सोच रही थी पुरुष के आत्मविभोर एवं तन्मय कर देने वाले प्रवाह में भी नारी का मन एक की तरह अपना सिर ऊपर उठाए हुए रहता है, अपने अस्तित्व को सर्वदा बनाए रखता है।

परिणय

जब से इस शहर में भंडारी स्टोर का श्रीगणेश हुआ है तब से यहाँ के व्योपारियों के बीच हाय-हाय मच गई है क्योंकि भण्डारी स्टोर ने उनका सारा व्यापार चौपट कर दिया है। असल में इस स्टोर में एक पैसे की चीज़ से लेकर एक हज़ार या अधिक की चीज़ें भी मिलती हैं। इस स्टोर के पचीसों विभाग हैं, दाल, मसाला, सुई, धागा, चमड़े की चीज़ें, कपड़े, फर्नीचर, रेडियो, ग्रामोफोन आदि यहाँ तक कि दैनिक जीवन में प्रयोग होने वाली सभी चीज़ें यहाँ भाँति-भाँति की और उत्तम मिलती हैं परन्तु इस दूकान का सबसे बड़ा आकर्षण यह है कि प्रत्येक विभाग में महिलाएँ सेल्स विमेन हैं और यह सेल्स विमेन शहर के अच्छे-अच्छे घरों की लड़कियाँ हैं क्योंकि उन्हें केवल पाँच घंटे काम करने के दो सौ रुपये वेतन दिया जाता था और इन लड़कियों का बड़ा आदर होता था। विलायती दूकानों के अनुरूप इस दूकान में इन सेल्स विमेन के साथ बहुत ही सभ्य और शिष्ट व्यवहार होता। लड़कियाँ दो टोलियों में विभक्त थीं। एक टोली सुबह ग्यारह से तीन तक और दूसरी तीन से आठ तक काम करती। इस स्टोर के मालिक, सेठ सतीश भण्डारी

के पुरखे पहले लाहौर में बड़े संपन्न व्यापारी थे, पर स्वतन्त्रता के बाद उन्हें भारत में आना पड़ा। भारत आने पर उन्होंने इसी शहर को अपने व्यापार के लिये चुना। सेठ सतीश भन्डारी पढ़े-लिखे व्यक्ति थे। उनके पिता ने उन्हें विलायत व्यापार सीखने के लिये भेजा था। इसीलिये जब सतीश को नये काम-काज की स्थापना का मौक़ा मिला तो उन्होंने अपना सारा कारोबार विलायती ढंग पर शुरू किया। वह अनुशासन के बड़े कायल थे और काम के समय अपने स्टोर में किसी की भी बद-तमीजी न राहते। सेल्स विमेन से कोई भी ज़रा सा दुर्व्यवहार करना, वह नौकरी से हाथ धो बैठता। परिणाम स्वरूप इस स्टोर मे मर्यादा, रख-रखाव, और शिष्टता का बड़ी सतर्कता से पालन किया जाता। फलतः शिक्षित उच्चवर्ग की लड़कियाँ जो अपना समय घर बैठे-बैठे न बिता पातीं, यहाँ काम करने के लिये आने लगी। शहरों के सभी ग्राहक प्रायः इसी स्टोर में आते थे, क्योंकि शहर मे पहली ही बार किसी दूकान में लड़कियाँ सेल्स विमेन बनी थी। इसी कारण नगर के अन्य दूकानदारों का व्यापार सारा ठप हो गया था।

इसी स्टोर के तीन से आठ वाली शिफ्ट मे फौज के विश्राम-प्राप्त ब्रिगेडियर बाजपेई की इकलोती कन्या नीरा भी काम करती थी। नीरा बनारस विश्वविद्यालय से एम० ए० पास कर लेने के उपरान्त घर पर बेकार बैठे-बैठे ऊब गई थी, अतः अपने पिता को बताये बिना ही उसने नौकरी कर ली थी। नीरा सुन्दर थी, समझदार थी और सबसे बड़ी बात यह कि वह एक अमीर बाप की इकलौती बेटी थी। इसी कारण शहर के ऊँचे वर्ग के युवक उसके चारो ओर मँडराया करते थे। अविवा-हित विवाह के लालच में और विवाहित केवल रस के लिये। नीरा के पिता चाहते थे कि क्लबों में आया जाया करे और अपने मित्रगण को चाय-पानी पर बुला लिया करे, परन्तु नीरा थी कि वह किसी से मिलना

भी पसन्द न करती थी। क्लबों से तो वह ऐसे भागती थी जैसे वे विभीषिका हों। उसे तथाकथित सामाजिक जीवन बिल्कुल ही पसन्द न था और उस सोसाइटी में फिरने वाले युवकों को वह निरा चरित्रहीन ही समझती। असल में नीरा पर प्रारम्भ से ही उसकी माता का बड़ा प्रभाव चला आ रहा था और अब माता की मृत्यु के बाद तो वह प्रभाव और भी पक्का हो गया था। नीरा सबसे अत्यन्त शिष्टता से बोलती थी, हँसती थी, मिलती-जुलती थी, और साधारण दृष्टि से वह एक सर्वथा आधुनिक तथा सुशिक्षित लड़की मालूम होती थी। बिल्कुल नई चलन की चोली, साड़ियाँ, सेंडिल आदि में उसकी रुचि बड़ी ऊँची थी। लोग उसके पसन्द की दाद देते थे। परन्तु वह अन्दर से न किसी बात में सुखी होती और न दुखी। वह चाहती थी कि वह जैसे-तैसे जल्दी से बस, चालीस वर्ष की हो जाय जिससे कि वह संसार को छोड़कर किसी अच्छे आश्रम में चिन्तन मनन कर सके। वह इस दग़ाबाज़, भ्रष्ट, संसार में मिलकर खो जाना नही चाहती थी।......और उसके पिता चाहते थे कि वह किसी को पसंद करे, ब्याह की बात-चीत चलने दे और फिर धूम-धाम के साथ विवाह करके ग्रहस्थिन बन जाय। इसके लिये उनकी दृष्टि में कई अच्छे युवक थे जो नीरा का प्यार पाने के लिये आकुल थे। परन्तु इन युवकों को नीरा धन रूपी दीपशिखा का पतिंगा ही समझती... उसको इन सब से घोर घृणा थी......वह उनके पास भी नहीं फटकना चाहती थी।

जब से नीरा ने भण्डारी स्टोर में नौकरी शुरू की तब से इन युवकों को उसके पास तक पहुँचने का मौका मिलने लगा। अतएव वह एक-एक करके नीरा विभाग में पहुँचते और हें...हें...करके और बहुत घुमा-फिरा कर उसे सिनेमा या क्लब चलने के लिये आग्रह करते और नीरा केवल एक वाक्य में उन्हें ऐसा टका सा जवाब दे देती कि वह हाथ मलते

हुये चले जाते । कुछ युवक तो इस अपमान को पी गये परन्तु कुछ ने नीरा की बदनामी करके अपना बदला चुकाया......कही किसी नारी के चरित्र की चर्चा हों और वहाँ सुनने-सुनाने वालों की कमी हो ?... देखते ही देखते शहर भर के परनिन्दा करने के अभ्यस्त लोगों में नीरा के ही चरित्र की चर्चा चलने लगी । कॉफी हाउस में, ह्वाइट स्नो रेस्ट्रॉं मे रेस-कोर्स पर और जहाँ-जहाँ पर यूनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर और शहर के पढ़े-लिखे युवक अपना विराम काल काटते वही नीरा की चर्चा सुनाई देती । परन्तु श्यामकुमार को इस तरह से बदला उतारने में शान्ति नही मिली । उन्होने पहले 'सम्पादक के नाम पत्र' के कालम मे अच्छे घरो की लड़कियो के भण्डारी स्टोर मे नौकरी करने पर आपत्ति उठाई, फिर भण्डारी स्टोर की लड़कियों का चरित्र भ्रष्ट करने का अड्डा साबित करने की चेष्टा की, परन्तु सेठ सतीश भण्डारी ने संपादक से मिल कर इस बात को वही दबा दिया । फिर श्यामकुमार जी ने नीरा के पिता को एक बिना नाम का पत्र भेजा जिसमे नीरा के चरित्र को लेकर ऊट-पटाँग बाते लिखी थी । उसमे यह भी लिखा कि सेठ सतीश भण्डारी ने उसका चरित्र भ्रष्ट कर दिया । इस पत्र को पढ़कर नीरा के पिता को बहुत बुरा लगा । वे अपने नाम पर, कुटुम्भ के नाम पर, अपनी इकलौती बेटी के नाम पर इस प्रकार का आरोप नही सुनना चाहते थे । वह पहिले तो नीरा के नौकरी करने के समाचार से चौके, फिर उन्होंने नीरा से नौकरी छोड़ने के लिये ज़िद की, परन्तु नीरा न मानी । नीरा के पिता को उसका इन्कार तनिक न रुचा । अतः उन्होंने तय कर लिया था कि जब उनकी बेटी उनका कहना ही नही मानती तो वह उसे अपनी कार का प्रयोग भी नहीं करने देंगे । यही नहीं, घर में भी पिता पुत्री मे बोलचाल बहुत कम हो गयी । नीरा के पिता बड़े दुखी रहते । उन्होंने

शहर में आना-जाना बन्द कर दिया । सारे दिन घर में ही रहते । नीरा को यह सब देख कर बहुत बुरा लगता, परन्तु वह कुछ कहती नहीं थी और वह अपनी ज़िद पर अटल रही । उसने अब रिक्शे पर आना-जाना प्रारम्भ कर दिया ।

श्यामकुमार को यह तो मालूम नहीं हुआ कि नीरा पर घर में क्या बीती, परन्तु नीरा को रिक्शे पर आते जाते देखकर उसे प्रसन्नता अवश्य होती । कुछ दिनों मे यह प्रसन्नता भी पुरानी पड़ गई अतः उसने एक और चाल चलना निश्चित किया । अस्तु......एक ओर तो उन्होंने भण्डारी स्टोर के कन्वेसर का काम शुरू कर दिया और दूसरी ओर भंडारी स्टोर के दो चार कार्यकर्ताओं से मैत्री की और पैसों के बल पर स्टोर के भेद एकत्रित करके शहर के और दूकानदारों को बताने लगा । जहाँ-जहाँ से सेठ भंडारी माल मँगाते वहीं से और दुकानें भी मँगाने लगी और विज्ञापन देकर खुल्लमखुल्ला भंडारी स्टोर की अपेक्षा कम दाम पर बेचतं । अभी तक तो जितनी प्रकार की चीज़े केवल भन्डारी स्टोर में मिलती, वह और कही नही मिल पाती परन्तु श्यामकुमार की इस चाल ने इस स्टोर की यह विशेषता नष्ट कर दी । फलतः दूकान की बिक्री बिल्कुल ही गिर गई । उन्हें स्वभावतया अपने ही कर्मचारियों पर सन्देह उत्पन्न हुआ । अतः वह निरन्तर इस चिंता मे रहने लगे कि आखिर कौन इस परिस्थिति के लिए उत्तरदायी है ? इसी बीच एक दिन सेठ भन्डारी को एक बिना नाम का पत्र मिला जिसमें नीरा के चरित्र पर खासे छीटे फेके गये थे और यह भी कहा गया था कि नीरा शराब के नशे में क्लबों में स्टोर के भेदों की चर्चा किया करती है । सेठ भन्डारी को इस पत्र में लिखी बातों पर विश्वास न हुआ । एक-एक करके वह शहर के समस्त क्लबों में गये परन्तु नीरा उन्हें कहीं भी न दिखाई दी । अन्त में उन्होंने वह पत्र पुलिस के सी० आई० डी० विभाग

में जाँच के लिए दे दिया। उन्हीं दिनों एक युवक श्री प्रतापचन्द्र वहाँ डिप्युटी सुपरिन्टेन्डेन्ट के पद पर कही बाहर से बदल कर आए थे। उन्होंने अपनी थोड़ी सी ही नौकरी मे पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर लिया था और इस प्रकार के मामलों की जाँच मे तो वह बहुत ही दक्ष थे। उन्हें मनोविज्ञान में डाक्टरेट मिल चुकी थी इसलिये वह सी० आई० डी० के केसों का बहुत बढ़िया हल निकाला करते थे। संयोग से सेठ भन्डारी का यह केस भी उन्हीं को सौंपा गया।

प्रताप ने सब से पहले नीरा का ही अध्ययन आरम्भ किया। वह उसके स्टाल पर जाता, एकाध चीज़ खरीद भी लाता परन्तु वह नीरा के कुछ समीप न पहुँच पाया क्योकि नीरा की आदत थी कि जबतक कोई मतलब की बात करता वह बड़ी सभ्यता से उत्तर देती और ज्यों वह एक इंच भी इधर-उधर होता कि नीरा तड़क कर फटकार देती। इस प्रकार उसके पास तक पहुँचने के कारण उसने तय किया कि वह रोज शाम को रिक्शा लाएगा और उसे घर पहुँचायेगा। दूसरे दिन से वेश बदले हुए प्रताप रिक्शा लिये स्टोर के फाटक पर आ खड़े होते और नीरा रिक्शा नया होने के कारण उसी पर बैठ जाती। कुछ दिन तो प्रताप ने चुपचाप रिक्शा चलाया फिर वह कुछ-कुछ बात भी करने लगा। नीरा को यह रिक्शेवाला कुछ पसन्द सा आया, अतः उसको रोज स्टोर आने-जाने के लिये मासिक वेतन पर तय कर लिया। कभी-कभी घर पहुँचने पर वह प्रताप को अपने खानसामा के द्वारा खाना भी खिलवाती थी। इससे प्रताप की खानसामा से मैत्री हो गई और इस मैत्री के नाते नीरा की घरेलू बातें प्रताप को मालूम होने लगीं। नीरा के पिता का खानसामा पर बड़ा भरोसा था और वह घर बैठे-बैठे अपने मन की सारी बातें उससे कहा करते थे। खानसामा ने नीरा को बेटी के समान पाला था और उस घर में वह २५ साल से

नौकरी कर रहा था। वह नीरा का बड़ा सम्मान करता।

एक ओर तो प्रताप को नीरा के घर के वातावरण का पता चलने लगा दूसरी ओर वह उस बिना नाम के पत्र से स्टोर के कार्यालय के एक-एक पत्र मिलाता। अन्त में वह पत्र स्टोर की फाइल में रखे श्यामकुमार के उस पत्र से मिल गया जो उसने कन्वेसर होने के पूर्व प्रार्थना-पत्र के रूप में भेजा था। अब वह श्यामकुमार की गति-विधि पर नजर रखने लगा। इस बीच उसकी श्यामकुमार से मैत्री भी हो गई। इस मैत्री में उसे पता चला गया कि स्टोर के भेद कैसे और किन से खुले थे। इस प्रकार से साल भर की मेहनत के बाद प्रताप ने सेठ भन्डारी के केस की जाँच तो पूरी कर दी; परन्तु उन्होंने स्वयं अपने लिये एक नया केस खड़ा कर लिया। वह था नीरा के प्रति प्यार। एक साल से निरन्तर नीरा का विचार करते-करते नीरा अब उसके हृदय में आ बैठी थी। परन्तु नीरा की आदत जानने के कारण वह उसके अधिक समीप पहुँचने की चेष्टा करते हिचकता था। उधर नीरा का भन्डारी स्टोर की नौकरी से जी ऊब गया था। अतः उसने वहाँ से नौकरी छोड़ दी। इस नौकरी को छोड़ते ही पिता पुत्री के बीच की खाई फिर से पट गई और दोनों पूर्ववत् एक दूसरे के समीप आ गए।

यह सब तो हुआ परन्तु नीरा बहुत दिनों तक घर में निश्चेष्ट न बैठ सकी। नियमित रूप से बाहर जाकर काम में डूबी रहने वाली नीरा का मन शीघ्र ही इस घरेलू जीवन से हट गया। उसने शहर में बच्चों के लिये एक बाल निकेतन की स्थापना करने का निश्चय किया। सरकार से चन्दा लेने की भी जुगुत निकाली। पिता के एक पुराने मकान को खाली कराया तथा अपनी कुछ और सहेलियों को भी इस ओर आकर्षित किया, जिन्होंने अनेक दान-दाताओं से कुछ चन्दा भी इकट्ठा कर लिया था। नीरा को यह कहते देख उसके पिता और उनके मित्रगण उसे

यह कह कर चिढ़ाते कि वह अब मिनिस्टर बनने का प्रयत्न कर रही है। न जाने क्यों नीरा को उनका चिढ़ाना कुछ भला-सा लगता। एक दिन चाय पीते समय घर के खानसामा ने नीरा के पिता से कहा:—

"साहब, बिटिया के तांई कोई मिनिस्टर ढूँढों"—इस पर नीरा खिसिया-सी गई और खानसामा पर बिगड़ने लगी। वह बिगड़ी भले ही परन्तु खानसामा की इस बात को उसके अर्धचेतन मस्तिष्क ने ग्रहण अवश्य कर लिया।

दिन बितने लगे। "बालनिकेतन" के उद्‌घाटन का भी समय आ गया। वैसे किसी शुभ काम में देर नहीं होनी चाहिये परन्तु उद्‌घाटन भी बहुत आवश्यक था और वह भी किसी मिनिस्टर के हाथों न हुआ तो फिर क्या बात हुई बिना इसके विज्ञापन के अभाव मे चन्दा इकट्ठा करना तो अत्यन्त ही कठिन होता। अतः तलाश अब यह होने लगी कि बुलाया जाय तो किस मिनिस्टर को बुलाया जाय। मिनिस्टर की सूचियाँ बनाई जाने लगी और विविध संभावनाओं पर विचार होने लगा। अंत में बहुत सोच-विचार के बाद निश्चय किया गया कि श्री राजीवलोचन से ही उद्‌घाटन कराया जाय। वे कला प्रेमी थे, जन-हित की ओर उनका झुकाव था और सबसे बड़ी बात थी कि ऐसे लोकोपकारी कार्यों के लिये वह बहुत शीघ्र मान जाते। लोग कहते हैं कि अविवाहित होने के कारण समाज-सेवा की ओर उनका बहुत झुकाव है। अस्तु, तय यह हुआ कि उद्‌घाटन के लिये उन्हें ही बुलाया जाय। उसकी तिथि भी निश्चित हो गयी। "बाल निकेतन" में घूम धाम के साथ तैयारियाँ शुरू न हो गईं। अब नीरा घर बहुत कम आती। उसका सारा ध्यान उस निकेतन में केन्द्रित था। इसी बीच ब्रिगेडियर बाजपेई के घर एक बहुत बड़ी चोरी हो गई। घर में न कोई आया न गया और बन्द तिजौरी से एकदम दस हजार रुपया गायब। यह रुपया नीरा की माँ ने तिजोरी के एक कोने

में नीरा के विवाह के लिये अलग रख दिये थे। इस चोरी से ब्रिगेडियर बाजपेयी को बड़ी मार्मिक चोट लगी और उन्होंने तुरन्त पुलिस को सूचना दी। केस फिर घूम-फिर कर प्रतापचन्द्र के पास पहुँचा। इस प्रकार चोरी की जांच के लिए प्रतापचन्द्र का पदार्पण मीरा के घर पहिले पहल हुआ। जांच के सिलसिले में वह बहुधा ही उनके यहां आते। घर के कोने २ को देखते खानसामा ब्रिगेडियर साहब और नीरा से बात करते और चले जाते। जैसे-जैसे दिन बीतते गये प्रतापचन्द्र ब्रिगेडियर साहब की आंखों में चढ़ने लगे। वह खाने या चाय पर बुलाये जाने लगे और इन अवसरों पर बैठ कर घंटों बातें करते।

देखते ही देखते 'बाल निकेतन' के उद्‌घाटन का दिन आ गया। दिल्ली से निश्चित समय पर धूमधाम के साथ श्री राजीवलोचन आ पहुँचे बसंत पंचमी का दिन था। सुहावनी ऋतु में प्रातःकालीन सूर्य की सुहावनी धूप में समारोहपूर्वक उद्‌घाटन कार्य आरम्भ हुआ। पहिले मंगलाचरण, फिर पृथ्वी सूक्त से पाठ, तदुपरान्त राष्ट्र-ध्वज का फहराना, बच्चों द्वारा वन्देमातरम् का गान और अन्त में माननीय श्री राजीवलोचत जी का प्रभावोत्पादक भाषण। बच्चों को मिठाई बाँटने के बाद कार्य समाप्त हुआ। इस समारोह पूर्ण उद्‌घाटन की सजधज और तड़क-भड़क देखने के बाद प्रतापचन्द्र की नीरा के पिता की चोरी का रहस्य ज्ञात करने में अधिक देर न लगी। वह जान गये कि चोरी किसने की थी; परन्तु रहस्योद्‌घाटन से भी अधिक कठिन कार्य था ब्रिगेडियर साहब को यह बतलाना कि चोर कोई और नहीं, उन्हीं की......। उन्होंने इस जटिल समस्या पर बहुत विचार किया......बताएँ या न बताएँ बताते हैं तो उसके साथ अन्याय करते हैं जिसे वह प्यार करते हैं...जिसकी छवि सोते-जागते उनकी आंखों में समाई रहती है...जिसकी मूर्ति उनके हृदय के जाने किस कोने में स्थापित है। और, यदि नहीं बताते तो...तो अपने

कर्तव्य के साथ अन्याय करते हैं। हृदय उन्हें कर्तव्य को तिलाँजलि देने को विवश करता तो उनकी बुद्धि उन्हें कर्तव्यपालन करने के लिये प्रेरित करती। वह दुविधा मे पड़ गए......हृदय की मधुर प्रेरणा के आगे नतमस्तक हों या कर्तव्य के क्रूर अकुश से प्रताड़ित हो, बिलबिलाते हृदय से नीरा को लाँछित होने दें। जिस द्वन्द्व में वह पड़ गये थे उससे निस्तार कठिन था; परन्तु प्रताप का हृदय विजयी हुआ......उन्होने निश्चय किया कि वह चुप रहेंगे।

उद्घाटन के उपरान्त सब अपनी २ कारों में बैठ कर चल पड़े; प्रताप भी गम्भीर मुखमुद्रा से तथा हृदय की वेदना का भार हृदय में ही छिपाये चुपचाप, जिधर से आये थे उधर ही चले गये......हताश, दुःखी खोए-खोए से !! वहाँ रह गई केवल नीरा, वह भी खोई-खोई सी उदास दुखी और......!! वह आज न जाने क्यों, अपने जीवन में पहली ही बार, किसी के प्रति किसी के भाषण के प्रति एक अनिर्वचनीय कोमलता का अनुभव कर रही थी... ..उसके प्रति, जो उसकी भावनाओं से अवगत तक न था और उदघाटन की रस्म कर्यवाही समाप्त करके चला गया था। उद्घाटन करना, सभाओं की अध्यक्षता करना, भाषण देना और फिर इस प्रकार चला जाना उसके जीवन का साधारण सा क्रम था और उन्हें मालूम भी क्या था कि उनकी ओर कौन कब और कैसे आकर्षित हुआ; और क्यों ? परन्तु नीरा...बेचारी नीरा इस सम्बन्ध में आज अपने को विवश पा रही थी। उसके इस प्रकार आकृष्ट होने का कारण सम्भवतः उसे भी ज्ञात न था। अपने में इस परिवर्तन को आया देखकर स्वयं चकित थी; परन्तु वह करे तो क्या करे ? वह सोचती......अपने इस 'पतन' पर विचार करती......परन्तु साथ ही वह इसके लिए अपने मान को दोष भी तो न दे पाती थी। इसके विपरीत आज के प्रफुल्लित वातावरण में वह अपने हृदय में एक मधुर उमंग का अनुभव कर रही

थी । आज उसका हृदय उद्वेलित हो रहा था और वह उमंगों और कामनाओं की उर्मियों पर तैरती हुई एक अलौकिक आनन्द का अनुभव कर रही थी । वह जानती थी कि ये लहरें उसे ले जाकर वास्तविकता की कठोर चट्टान पर निर्दयता से पटक देंगी और तब उसकी यह सुखानुभूति शतछिन्न हो जायगी; परन्तु नीरा का हृदय नुख के इन पलायमान क्षणों से ही तुष्टि प्राप्त कर रहा था......उसके लिए यह अस्थिर भावना......कल्पना भी बहुत कुछ थी । वह अनिमेष नेत्रों से खड़ी उस ओर देखती रह गई जिधर राजीवलोचन जी अपनी मोटर में बैठकर गए थे.........शायद सदा के लिए । वह उसके चिरवियोग की घड़ी थी ।

पंचमी बीती, सप्ताह बीता, महीना बीता और समय···कभी न रुकने वाला समय बीतता ही गया । सब कुछ आया-गया हो गया; परन्तु जो न गई वह थी राजीवलोचन जी की याद......उनके भाषण की याद । वह जाती भी कैसे ? "बाल निकेतन"......उन्हीं के हाथों खोला गया बालनिकेतन अब भी था......उनके और नीरा के बीच सम्पर्क बनाए रखने का माध्यम । क्या बाल निकेतन उनके नाम से संयोजित न था ? तो क्यों न वह उसे ही... उनका प्रतीक मन ले ? उसी पर अपने हृदय की समस्त घनीभूत कोमलता ढाल दे ?

बात की बात

"मीरा, जब तू अपनी सहेलियों के साथ सिनेमा जाया करे तो मुझे भी ले जाया कर"।

"नहीं भाभी, हम सब रिड्यूस्ड रेट पर जाते हैं। आप को ले जायें तो सब को ऊँचे क्लाश में जाना पड़ेगा।"

"तो क्या हुआ, ऊँचे क्लाश में चलेंगे।"

"आप के टिकट के पैसे तो भाई जी देगें परन्तु मुझे और मेरी सहेलियों को अपने जेब-खर्च से खरीदना पड़ेगा।

"तो क्या हुआ" ?

"क्या हुआ ? बहुत कुछ हो जाता है। हम सब को १० रुपये जेब-खर्च मिलता है, उसी में कालेज के खर्च निभाने पड़ते हैं, इसलिए हम ऊँचे क्लास के टिकट नहीं ले सकतीं।

"बहाने मत बना मीरा, तू मुझे अपने साथ ले जाना नहीं चाहती।"

हाँ बात भी यही है, एक तो भाई जी के साथ, मुझसे ज्यादा सिनेमा जाती हैं दूसरे आप इतना सज-धज के जाती हैं कि सड़क पर, सिनेमा में सब मुड़-मुड़ कर आप को देखने लगते हैं तो हम सब को बहुत शर्म

आती है। और फिर, इन सब बातो को सह भी लिया जाय तो हमारे पास पैसे ही नही है। मैं एक बार यदि ज्यादा खर्च आप के लिए सह भी लूँ पर गेरी सहेलियाँ क्यों सहे ?

"अच्छा यह बात है, मेरा तेरे भाई के साथ जाना तुझे बुरा लगता है, मेरा अच्छे कपड़े पहनना तुझे बुरा लगता है, मेरी शादी को एक ही साल हुआ है तो मैं अच्छे कपड़े क्यो न पहनूँ ?"

"भाभी मैंने अच्छे कपड़े को कब मना किया, खूब पहनों और जम कर पहनों पर आप का यह सजना मेरी सहेलियो के बीच नही खप सकता है। आप का रास्ता अलग है, हम लोगो का अलग। आप अपने रास्ते खुश रहिये और मैं अपने रास्ते पर।"

"बस बस ज्यादा बात मत कर"

"भाभी, मैं ज्यादा क्या कह सकती हूँ जो आपने पूछा उसका मैंने जवाब दे दिया, इतना मैं जरूर कहूँगी कि कुँवारी लड़कियों की टोली में विवाहित नही खप सकती।"

"अच्छा, जैसे तुम लोगो की शादियाँ नही होगी।"

"अब होंगी जब देखी जायगी, अभी तो हम पढ ही रही हैं।

अच्छा -अच्छा जा क्या कतरनी की तरह ज़बान चला रही है।

"भाभी मैं अभी चली जाऊँगी पर गालियाँ मत दो, मैने एक साल से आपका बहुत काम किया है। जब आप बहू बन कर आई थीं तो मैं नौकरानी की तरह आपका काम करती रही और अब आप मेरी जबान को कतरनी कह रही हैं। मेरी एक साल की सेवाओं का अच्छा फल नहीं दे सकती तो बुरा तो मत दो।"

"जा, जा, क्या कच-कच लगा रक्खा है।"

"अच्छा, जैसी आपकी मर्जी" मीरा मुख लटका कर चली गई

अपने कमरे की ओर, किताब बन्द करके खूब रोई और रो-रो कर सो गई ।

भाभी ने तय किया कि अगर मीरा अपने साथ सिनेमा ले जाना नहीं चाहती तो मीरा का घर से निकलना बन्द करवा देगी ।

इस घटना को आठ दस दिन हो गये तो एक दिन अपने पति से बोली:— "मैं आपसे कई दिनों से एक बात कहना चाह रही थी पर कह नहीं पाती अंगर आप मुझ पर नाराज़ न हों तो आज कह दूँ ।"

मोहन मुस्कराया, पास आकर अपनी पत्नी रमा को बाहों में भर बड़े प्यार से कहा "कहो, क्या कहना चाहती हो ? अब मेरे साथ रहते-रहते एक साल हो गया है, फिर भी मुझ से डरती हो" ।

रमा मुस्काई, शर्म से सिर झुका दिया ।

"हाँ, हाँ तो कहो न"।

"जी जी...मुझे कुछ मीरा के...में.........

'क्या, मीरा के बारे में क्या हुआ............?

"मुझे मालूम है तुम्हें उसकी शादी की बहुत फिक्र है भई ढूँढ तो तो रहा हूँ जब लड़का मिल जायगा तो विवाह कर दूँगा । तू इतनी बेचैन क्यों हो रही है ?

"जी.........विवाह के बारे में नहीं...उसकी रंग-रेलियों के बारे कहना चाह रही थी" ।

"क्या कहा, तो बता न जल्दी, "कहते हुए मोहन ने रमा की ठोढ़ी के सहारे उसका मुख ऊँचा किया" ।

"जी वो जज वर्मा है ना, उसके बेटे को रोज दोपहर को मीरा चिट्ठी भेजती है कलुवा के हाथ ।

"तुम्हें कैसे मालूम ? "

"कल मैंने वह चिट्ठी पकड़ ली !

"कहाँ है वह चिट्ठी ?

"यह रही, लीजिये"। कहते हुए रमा ने अपने पल्ले के कोने मे बाँधा हुआ पत्र निकाल कर अपने पति के हाथ पर रक्खा।

मोहन ने जल्दी से उसे खोला और पढ़ा। "..............."

ना कर इतना प्यार, ना कर इतना प्यार पछी ना कर इतना प्यार

है प्यार दुखों का हार बन्दे, ना कर इतना प्यार

ना कर इतना प्यार पंछी, ना कर इतना प्यार

मीरा

यह तो कोई सिनेमा का गाना है।

"हाँ, रोज दोपहर का रेडियो सुनकर एक गाना उतार लेती है। और कलुआ के हाथ भेज देती है।

"हूँ" मोहन का पारा चढ़ता जा रहा था।

"जब मैंने कलुआ से पूछा तो कहने लगा रानी बिटिया के पास भिजावत रही... ।

वह रानी बिटिया कौन हैं ?

वर्मा साहब के एक लड़की रानी है और रानी से छोटा लड़का है मधुकर"।

"हूँ"।

"मुझे लगता है कि रानी मधुकर और मीरा को मिलाने का काम करती है।

"रानी क्या मीरा के साथ पढती है ?"

"नही तो रानी फस्ट ईयर, एम० ए० में पढ़ती हैं।

"पर मीरा तो एफ० ए० में पढ़ती हैं तो इन दोनों की दोस्ती कैसे हुई ?"

"एक कालेज में जो पढते हैं।"

"तुमने यही एक चिट्ठी पकड़ी है या कुछ और भी है ?"

"हाँ दो और हैं बक्से में बन्द।"

"दिखाना ?"

रमा ने चटपट ट्रंक खोला और एक लिफाफे को निकाल कर दे दिया। मोहन ने लिफाफे से दो पर्चियाँ निकालीं। पहला था...

"तुम्हीं को ढूँढते फिरते हैं, हम इन चाँद तारों में"

"मीरा"

दूसरा था

"प्रेम बेल में फूल न पत्ते, फल इसमें आये।
फिर भी मन कितना मूरख है, तुम्हीं पर मर जाये॥"

"मीरा"

मोहन का मुख तमतमा गया। कलुआ को बुलाकर उसकी तनखाह देकर नौकरी से अलग किया। माँ, अचम्भे में पड़ गई, मोहन से कारण पूछा तो कारण न बता कर कहा......"

"आज से मीरा कालेज नहीं जायेगी और उसे घर से बाहर जाने मत देना।

"घर बैठकर पढ़ाई कैसे करेगी ? बेचारी, वो इस बार यूनिवर्सिटी में फर्स्ट आना चाहती है, अभी तक तो क्लास में फर्स्ट आती रही है ?"

"माँ तुम समझती तो हो नहीं, आखिर मैं जो कुछ कह रहा हूँ, उसका भी तो कुछ कारण हो सकता है ?"

"सुनूं तो क्या कारण है ?"

"फिर कभी बता दूँगा।" कहता हुआ मोहन घर से निकल कर काम पर चला गया। मोहन का यह व्यवहार माँ को तनिक नहीं रुचा। अभी तक एक-एक काम माँ से पूछ कर करता था और आज पूछने पर भी कारण नहीं बताया। कल तो वह माँ बेटी को घर से बिना कारण

बताये निकाल सकता है। माँ का मन भारी हो गया। रमा को बुला कर इसका कारण पूछा तो रमा ने जवाब दिया

'मुझे नही मालूम।"

"तुझे मालूम नही कि बताना नही चाहती।"

"उन्होने मना कर दिया।"

मीरा रोती हुई माँ के पास आई और बोली।...

"मना कर दिया कि आपने कुछ फूँक दिया, भाई जी ने आज तक ऐसा व्यवहार नही किया।"

"लो माँ, बेटी मेरे पीछे ही पड गई।" कहती हुई रमा रोने लगी। माँ मीरा का हाथ पकडकर अपने कमरे की ओर चल दी। रमा बिना पूछे ताछे तैयार होकर मायके चली गई। उसका मायका उसी शहर मे था।

दिन बीते, मीरा रो-रो कर थक गई परन्तु किसी ने उसे कालेज जाने नही दिया। उसको जेब खर्च मिलना बन्द हो गया। सफेद खद्दर के सिवाय दूसरा कपडा पहनने को नही मिलता। सहेलियो के घर जाना बन्द, सिनेमा जाना बन्द। अगर कोई सहेली उसे मिलने आये तो घर मे सब उसे ताने मारते थे। इस प्रकार तीन महीने कटे, एक दिन माँ और मोहन की बातचीत हुई तो माँ भी मीरा से नाक भौं सिकोडने लगी। लो सहानुभूति का अन्तिम सहारा भी गया। रानी से अब न रहा गया, वह एक दिन मीरा से मिलने आई, मीरा ने अपने कमरे का किवाड बन्द करके सब बताया और फूट-फूट करके रोई। रानी ने पूछा..." आखिर यह सब तेरे साथ क्यों किया जा रहा है।"

मीरा ने रोते-रोते जवाब दिया कि "कारण ही तो कोई बताता नही, मेरी किन गलतियों की सजा यह सब दे रहे हैं मुझे तो पता लगे

तो पैर पकड़कर माफी माँग लूँगी। और वह कार्य फिर नही दुहराऊँगी।

"खैर भगवान जो करता है अच्छे के लिए करता है। तुम इन सब से मन हटाकर पढ़ाई पर मन लगाओ याद रहे तुम्हे अब की बार यूनिवर्सिटी मे प्रथम आना है। नही तो मेरी तुम्हारी खुट्टी" रानी सलाह देकर कमरे मे निकली तो देखती क्या है कि मीरा की माँ, और भाभी नाक भौं चढाये खडी हैं। रानी ने दोनों को हाथ जोड कर नमस्कार किया। भाभी ने जवाब के रूप मे कहा "आज से तुम हमारे घर में पैर मत रखना।" रानी "अच्छा" कह कर चली गई परन्तु उसके तन बदन में आग लग गई।

रात को जब मोहन घर आया तो रमा ने नमक मिर्च लगा कर रानी के आने की बात कही और साथ मे यह भी कहा कि मीरा का छज्जे में खड़ा होना बन्द करवा दो। कारण पूछने पर बताया गया कि जब मुहल्ले की लडकियाँ कालेज जाती हैं तो मीरा छज्जे मे खड़ी होकर पत्र फेकती है। शाम को वही लडकियाँ जब वापस आती हैं तो इशारे से जवाब दे जाती हैं। बस, इस बात पर एलान हो गया कि मीरा छज्जे मे कभी न खड़ी हुआ करे। बात यहाँ तक बढ गई कि घर मे जो फल मिठाई आती तो उस पर मीरा का हक नही रहा। उसे केवल खाना दिया जाता उसके फुलको पर घी लगाना बन्द हो गया, दही देना बन्द हो गया। यह सब होता देख, आत्महत्या करने की सोची पढ़ाई मे उसका मन नही लगता। दिन-रात आत्महत्या पर अनुसधान की जाने लगी कभी रस्सी से लटक कर मरना चाहती। अभी तक की लाड़ प्यार की पलो लडकी अपने लोगो से उपेक्षा नही सह पा रही थी और का व्यवहार तो बिल्कुल अरुचिकर था। और इस परिवर्तित व्यवहार का कारण पता लगे तो कुछ किया भी जा सकता है परन्तु कोई सीधे मुँह कुछ

बोलता ही न था। भाभी सजधज के बाहर जाने में मस्त थीं माँ मन्दिरों का चक्कर लगाने में व्यस्त थीं और मीरा को दोनों समय चूल्हे में फुकना पड़ता था। घर वालो का मीरा पर से विश्वास हट जाने के कारण माँ या भाभी बारी-बारी से घर मे रहकर उस पर निगरानी रखते। मीरा अपने मन के हाहाकार में डूबी हुई थी। वह अपने गुस्से मे जल रही थी। जीवन में पहली बार उसने अनुभव किया कि दुनिया मे कोई किसी का नहीं होता, सुख में सब साथ देते हैं। परन्तु दुख अकेले ही को झेलना पड़ता है। फिर दुःख के दिन भी इतने लम्बे लम्बे होते हैं कि काटे नहीं कटते हैं। इस घुटन में रहते रहते एक दिन मीरा को बुखार चढ़ आया। उस दिन वह लेटी ही रही रोज की तरह उठकर उसने चूल्हा नही जलाया। भाभी ने देखा तो रसोई से जोर से बोली।

"मीरा आज क्या चाय नहीं बनेगी ? मीरा ने जवाब दिया "भाभी, रात भर मुझे बुखार रहा। अब मुझे कमजोरी लग रही है।" भाभी ने ताना मारा...।

"कमजोरी है या काम चोरी है।"

मीरा ताना न सह सकती। फिर उसका जीवन से मोह भी तो हट गया। जिस तन से वह पीछा छुडाना चाह रही थी उसी तन को आराम देकर स्वस्थ क्यों किया जाय। मीरा की आँखों में आंसू छलछला आये आज उसके पिता होते तो उसकी यह दुर्गति नही होती। माँ और भाई के रहते वह कैसी अनाथ सी हो गई थी। दूसरे घर की लड़की उसे अपने ही घर में कैसी अपमानित कर रही थी। मीरा पिता की याद करके बिलख-बिलख करके रोई। उसे ऐसा लगा जैसे उसके पिता ने उसके सिर पर हाथ फेर कर कहा "मीरू सब सहले, मैं तेरे साथ हूँ, भगवान तेरा भला करेगा।"

मीरा के शरीर में नई शक्ति आ गई जब पिताजी उसके साथ हैं तो उसे काहे का डर। वह उठी पिता के फोटो के पास गई उनके चरणों को छुआ, और आँसू पोंछ रसोई की ओर चल दी। जब तक भाभी चूल्हा जला चुकी थी, मीरा को आती देख भाभी नाक भौं सिकोड़ कर बाहर निकल आई। मीरा नित्य प्रति की भाँति काम में जुट गई। एक ओर काम करती जा रही थी दूसरी ओर आत्महत्या पर मन ही मन अनुसंधान करती जाती थी। वह जहर खायेगी, फिर उसके प्राण पंखेरू उड़कर पिता के पास चले जायेंगे। फिर यह मोहन, भाभी और माँ कुछ भी नहीं कर पायेंगे। इसी प्रकार से दिन कट रहे थे। एक दिन पोस्टमैन परीक्षा का रोल नम्बर दे गया। मीरा को अब पढ़ाई की फिक्र होने लगी, रसोई से जब-जब उसे फुरसत मिलती तो वह पढ़ाई में लग जाती। कुछ दिन और कटे तो परीक्षा के दिन आये, मोहन रोज मीरा को पहुँचाता और ले आता। वही मोहन जिसने बचपन में मीरा को गोद खिलाया था अब बोलता भी न था दोनों में इतनी खाई पड़ गयी थी कि एक दूसरे से बोल भी नहीं पाते थे। परीक्षा भवन में उसकी सहेलियाँ उसका वह सूखा मुख देख कर ताज्जुब करतीं। मीरा के बोलने में, हँसने में, जैसे जान ही नहीं, उसके हाव-भाव सब बहुत रूखे थे। परचे देने के बाद सब सहेलियाँ आपस में प्रश्नों के बारे में पूँछती, मीरा चुपचाप सुनती रहती बोलती कम थी। मोहन को आता देख मीरा उसके साथ घर आ जाती। घर पर कोई उससे यह नहीं पूछता था कि उसके परचे कैसे हुए कैसे नहीं हुए। घर की चुप्पी मीरा को खाने लगी, उसका मन पढ़ाई में बिल्कुल नहीं लगता। जैसे-तैसे परिक्षा के दिन कटे। फिर मीरा कैद में पड़ गयी। छज्जे में मत जाओ, छत पर मत जाओ, यह मत करो वो मत करो सूखी रोटी खाओ और जिये जाओ।

एक दिन मीरा ने सुना कि उसका विवाह जल्द से जल्द एक विधुर

के साथ किया जा रहा है। जिस के चार बच्चे हैं। उसी दिन उसके परीक्षा का नतीजा निकला तो पता लगा कि वह कम्पार्टमेंट में आई है। यह खबरे मिलते ही उसके गहरे घाव पर जैसे नमक छिड़क गया हो। उसने तय कर लिया कि वह कल से पहले-पहले ज़हर खा लेगी। परन्तु ज़हर मिलेगा कहाँ से। फिर उसकी एक सूझ के कारण उसने दवाई की अलमारी की सफाई आरम्भ करदी। कई नई-पुरानी दवाइयाँ रखी थी एक-एक बोतल को, डिब्बे को उठाकर साफ किया फिर तरकीब से रक्खा। एक घंटे के मेहनत के बाद उसे एक डिब्बा मिला। लेबल पर लिखा था, Dead Poison डिब्बा खोला तो कुछ सफेद पाउडर सा मिला। उसने उसे रख लिया और बाकी बोतलों को रख कर अपने कमरे में चली गयी। उस डिब्बे को अपने तकिये के नीचे रखकर भगवान की पूजा करने गयी पूजा कर चुकने पर उसने दो चने बराबर वह दवाई खा कर पानी पी लिया। दो मिनट बाद उसका सिर घूमने लगा, पेट में तूफान उठा वह लेट गई। कुछ देर बाद उसने उल्टी करना आरम्भ कर दिया। माँ ने बेटी का यह हाल देखा तो ममता ने जोर मारा, उसने शोर मचाया। डाक्टर के पास जाने के लिये घर मे, अड़ोस-पड़ोस में कोई नही था भाग्य उसे रानी के घर ले गया। रानी सुनते ही साइकिल पर बैठ डाक्टर को बुलाने चली गयी। आते समय मीरा के भाई को भी खबर दे आई।

डाक्टर ने आते ही सब को कमरे से निकाला। मरीज और डाक्टर के सिवाय कोई कमरे मे नही था परन्तु कमरे से निकल कर सब कान लगाये बाहर खड़े थे। घरका पुराना डाक्टर होने के नाते उन्होंने पूछा.........

"क्यों मीरू यह एकदम क्या हुआ ?"

मीरा रोती हुई बोली" डाक्टर मुझे बचाने की कोशिश मत करो।

मैंने जहर खाया है। मुझे मरने दो मुझे घर वाले बिना कारण बताये छः महीने से बहुत तंग कर रहे हैं।

"जहर तुम्हें कहाँ से मिला ?

"मीरा से वह डिब्बा तकिये से निकाल कर डाक्टर के हाथ पर रख दिया। डाक्टर ने डिब्बा खोला और समझ गया। अपने ड्राईवर को भिजवा कर अपनी डिस्पेन्सरी से दवाई मँगाई। जब तक कुछ इन्जेक्शन दिये। कुछ देर में कम्पाउंडर दवाई ले आया। फिर कम्पाउंडर, माँ, डाक्टर कभी ये कर, कभी वो कर, में लग गये और मीरा उल्टी पर उल्टी किये जा रही थी। उसका दम निकल सा रहा था। एक घन्टे तक जीवन और मृत्यु के युद्ध के बाद दवाई कुछ असर करने लगी। मीरा ने उल्टी करना बन्द कर दिया आँख मूँदे चुपचाप लेटी थी। घर में घुटन इतनी थी कि बस कुछ कहते नहीं बनता। जो जहाँ खड़े थे, खड़े रह गये। मोहन सब भूल गया। रानी उसी घर में अपना अपमान भूल गई। रमा का मन उसे इतना दुतकार रहा था कि वह उन्ही दुतकारों में खो गई थी। दो घंटे बाद डाक्टर ने कहा" मैं अब जाता हूँ, मीरा को सोने दो। मैं कुछ देर बाद आऊँगा" कम्पाउडर को कमरे में बैठा कर डाक्टर चले गये। माँ उठकर दूसरे कमरे मे आई। जहाँ पर रानी, मोहन और रमा थे। रानी को देखते ही बोली" देख ले, तेरे कारण क्या हो गया, मेरी एक बेटी है। पता नही वो जियेगी या नहीं।

यह सुनते ही रानी तमतमा उठी बोली......"यह कांड मेरे कारण हुआ है या तुम लोगों के कारण हुआ है ? बेचारी सत्रह साल की लकडी पर हाथ धोकर पड़ गये।"

"अर तू अपने भाई और मीरा को नहीं मिलाती होती तो कुछ नहीं होता माँ आग बबूला होकर बोली।"

"हयँ, मैंने मीरा और मधुकर को मिलाया, अरे यह कब और कैसे, जरा पता तो लगे।" रानी अचम्भे में पड़ कर बोली।

मोहन सुनकर बोला "मीरा दोपहर में रेडियो सुनती थी प्रेम गीत की लाइनों को लिख कर तेरे पास भेजती थी और तू उन्हें अपने भाई को देती थी।"

"अच्छा यह बात है" रानी व्यंग से बोली।" अब पता लगा कि तुम सब के दिमाग पर पत्थर पड़ गये हैं। अरे कान खोल कर सुन लो, मीरा वह गीत मेरे भाई को नही मुझे लिख कर भेजती थी जब से हम दोनों ने कालेज के ड्रामा मे राजा रानी का पार्ट खेला है तब से मैं उसे रानी कहती हूँ और थो मुझे राजा। यह सब देख कर उसके क्लाश की लड़कियों ने मीरा को चिढाना शुरू किया, होते-होते वह मुझसे शर्माने लगी। कभी-कभी अच्छे गीतों को सुनकर उसके बोल लिख कर मेरे पास भेजने लगी। सभी कालेज की लड़कियाँ हम दोनों को राजा रानी कहते हैं और फिर लड़कियों के स्कूल कालेज में तो यह आम बात है, एक ऊँचे क्लास की लड़की का नाम एक नीचे क्लास की लड़की से जोड़ दिया जाता है और फिर बाकी लड़कियाँ उन दोनों को चिढ़ाती है और आनन्द लेती हैं मेरा मधुकर तो प्रोफेसर रामलाल की लड़की को चाहता है और सम्भव है दोनों की शादी भी इस गर्मियों की छुट्टियों में हो जाय। आप लोग क्या बात कर रहे हैं ?

यह सब सुन मोहन कुछ नम्र होकर बोला, "पर रमा तो यही कहती रही कि तुम मीरा और मधुकर को मिलाने का काम कर रहीं "थी।"

रमा का मुख फक हो गया।

रानी बोली "और आपने मान लिया। रमा को आये अभी साल ही हुआ है, उसकी बातों को आपने मान लिया और मीरा को आप बचपन

से खिलाते रहे उसे आपने पहचानने की कोशिश नहीं की। धिक्कार है तुम पर। तुम में और मीरा में वही खून बह रहा है फिर भी उस पर आपका विश्वास नहीं था। रमा आपकी इच्छाओं को तृप्त करती है, तो उसकी बातों में आप ऐसे फँस गये कि आपकी बुद्धि भी कूच कर गई। कम से कम जो रमा ने बात कही थी उसकी पड़ताल तो करने की कोशिश करते। एक लड़की की जिन्दगी, शक के कारण खत्म कर दी। आज अगर मैं चाहूँ तो मोहन आपको और रमा को जेलखाने में बन्द करवा सकती हूँ। अगर यह मीरा की जहर खाने वाली बात फैला दूँ, तो बस आप लोग गये। इस डाक्टर पर मेरे पिता का बहुत ऐहसान है वह मेरे कहने पर अगर सत्य बोले तो आप लोग जेल की हवा खाते नजर आयेंगे।"

मोहन सन्न रह गया। उसे अपनी बेवकूफी पर शर्म आने लगी। माँ घूर-घूर कर रमा को देखने लगी रमा के मुख से बोल नहीं निकल रहे थे।

मोहन ने रानी से हाथ जोड़कर माफी माँगी।

रानी के मुख से निकल पड़ा "अच्छा हुआ यह बात आज खुल गयी नहीं तो मेरी प्यारी सहेली एल विधुर के साथ बँध जाती।"

यह सब सुनकर माँ की आँखों से आँसू बह निकले। तब तक खट-खट करता हुआ डाक्टर वापस आ गया। रमा चुपचाप खिसक कर अपने कमरे में चली गयी। बाकी सब डाक्टर के साथ मीरा के कमरे में गये। मीरा ने आँख खोल कर पानी माँगा। डाक्टर ने जवाब दिया..."पानी क्यों जहर खा।"

मीरा मुस्करा पड़ी। साथ में सब मुस्करा पड़े।

परिवर्तन

आज अम्बाला-स्टेशन पर पहली बार एक रेफ़्यूजीट्रेन आकर रुक गई यह बात नही थी कि अम्बाले में पहले कभी ट्रेन रुकी ही न हो और शरणार्थी उतरे चढ़े न हों परन्तु आज पहली बार ट्रेन के सारे मुसाफिरों को अम्बाले में उतरना पड़ा क्योंकि आज्ञानुसार ट्रेन आगे नहीं जा सकती थी।

हिन्दुस्थान के स्वतंत्र होने के साथ ही साथ हिन्दुस्थान के दो टुकड़े कर दिये गये थे। तभी से मार-काट मच गई और लोगों को घर-बार छोड़ भागना पड़ा। इसी कारण हिन्दू पाकिस्तान से आ रहे थे तो मुसलमान हिन्दुस्थान से पाकिस्तान जा रहे थे। हिन्दुस्तान 'सकुलर' राज्य होने के कारण सारे मुसलमानों को पाकिस्तान चले जाने की आवश्यकता न थी। परन्तु पाकिस्तान था एक मुसलमानी राज्य और इस कारण प्रत्येक हिन्दू को वहाँ से निकलने की विवशता थी। विस्थापित हिन्दुओं की सहायता के लिये एम० ई० ओ० (मिलिटरी इवैकुएशन आरगैनाइजेशन) के ट्रक चले और चली शरणार्थियों की स्पेशल ट्रेनें यही ट्रेनें पहले दिल्ली तक पहुँच जाया करतीं परन्तु ऐसी अनेकानेक

ट्रेनों के वहाँ पहुँच चुकने पर विस्थापितों से दिल्ली खचाखच भर गयी प्रत्येक स्कूल, मन्दिर, सड़क की पटरियाँ, कैम्प पुरानी दिल्ली के चारों ओर बनी शहरपनाह की दीवार के झरोखे तथा फिरोजशाह कोटला आदि प्राचीन स्थानों में विस्थापित ही विस्थापित दिखाई देते । दिल्ली की यह दशा देखकर ट्रेनों का दिल्ली तक आना रोक दिया गया। अब वे कुरुक्षेत्र में ही रोक ली जाती थी। देखते ही देखते कुरुक्षेत्र कैम्प की व्यवस्था असैनिक शासन की सामर्थ से बाहर हो गई और सैनिकों को जाकर कैम्प सम्हालना पड़ा । उन्होंने आकर सबसे पहले ट्रेनों का कुरुक्षेत्र तक आना रोक दिया अतः ट्रेनें अम्बाला में रोकी जाने लगीं ।

इस पहली ट्रेन का अम्बाला-स्टेशन पर रुकना था कि चारों ओर मक्खियाँ फैल गई । ट्रेन के पीछे-पीछे मक्खियाँ भी अपनी स्वाभिभक्ति दिखाने चली आई थीं । पूरे घण्टे भर के बाद कहीं समम्त यात्री ट्रेन से उतर पाये, क्योंकि वहाँ पर एक ही आदमी एक टूटी-फूटी बाँस की सीढ़ी लिये फिर रहा था । जो प्रत्येक यात्री से उतारने का एक पैसा लेता था। बात यह थी कि सवारी-गाड़ियों के अभाव में विस्थापितों को मालगाड़ी के ऊँचे और भाँति-भाँति के डब्बो में भेजा जा रहा था। और इन गाड़ियों को सदा ऊँचा प्लेट फार्म मिलना भी संभव नही था । इसीलिये ट्रेनों के आने पर सीढी वाले यात्रियों को पावदानहीन ऊँचे डब्बों से उतारने के लिये आ पहुँचते थे और मुसीबत के मारे, भूखे तथा प्यासे एवं शरण स्थान ढूँढ़ने को आतुर यात्रियों से पैसे कमाते थे परन्तु व्यापार का ढंग अभी अम्बाला-स्टेशन पर नहीं फैला था ।

शोर, कराहना आदि के बीच सारे विस्थापित यात्री ट्रकों में लाद कर कैम्प पहुँचाये गये । इस ट्रेन के शरणार्थी अधिकतर मुलतान के थे और इन्हीं में हरबंस भी था । उसके सात उसका बूढ़ा बाप और एक

आठ वर्ष की बहिन कैम्प पहुँचने पर हरबंस का नाम रजिस्टर में लिखा गया। उसे एक तम्बू मिला एक राशन कार्ड दिया गया तथा कपड़ों के लिये उसे एक पर्ची भी मिली। भगदड़ और हाय-हंगामे के बीच हरबंस ने यह सब चीजें संध्या होने तक ले लीं और भीड़ से कुछ दूर अपना तम्बू तानने में लग गया। यहाँ उसका स्काउट होना काम आ गया। अपना तम्बू खड़ा कर चुकने पर उसने अपने और साथियों के भी तम्बू तनवाये। दिन-रात काम करने के बाद उसका घर कुछ-कुछ ठीक हो गया। दूसरे दिन सुस्ताने को समय मिला तो भीड़ से कुछ दूर जाकर वह घास पर लेट गया उसका सब विचारों से रिक्त मस्तिष्क चारों ओर रिक्तता ही अनुभव करने लगा। धीरे-धीरे अम्बाले की विस्थापितों की उस बस्ती के ऊपर छाये हुये नीलाकाश पर उसकी दृष्टि गड़ गई वह अपनी जन्म भूमि से अपने पैतृक घर से दूर...बहुत दूर एक नये स्थान में आ गया है। यहाँ चारों ओर सब नवीन और अपरिचित हैं.........दृश्य, स्थान और पास-पड़ोसी। उसका इसमें से किसी से भी तो परिचय नहीं। उसके हृदय में इस समय था एक सूनापन। वह अनुभव कर रहा था नितांत एकाकीपन। उदासी से उसने अपनी दृष्टि चारों ओर दौड़ाई थी, ऊपर आकाश और आकाश पर यत्र-तत्र मेघ मालाएं तथा नीचे वृक्षावलि उनके ऊपर उड़ते हुए पक्षीगण। सहसा उसमें भावान्तर हो उठा। उसने चौंककर पुनः इन सबको ध्यान से देखा अपरिचित ? कहाँ ? मुलतान में भी तो आकाश ऐसे ही नीलवर्ण का था वहाँ भी तो ऐसी ही मेघमालाएँ सांध्य-गगन को नयनाभिराम बनाया करती थी। वहाँ भी तो बसेरा लेने जाने के समय पक्षीगण इसी प्रकार इन्हीं स्वरों में ऐसे ही वृक्षों के ऊपर ,कलरव करते हुए वायुमंडल को प्रतिध्वनित कर देते थे। परन्तु वही सब यहाँ पर परिवर्तित क्यों लग रहे हैं। इसी विचार के साथ ही साथ उसने अपनी आँखें बन्द कर एक

लम्बी साँस ली। फिर आँखें खुलीं तो उसकी दृष्टि कुछ दूर एक नीम के पेड़ कर जा पड़ी। हवा के झौंके से पेड़ के सारे पत्ते हिल उठते हैं कुछ पत्ते झड़ जाते हैं। और फिर शांति। उन पत्तों के झड़ने के बाद पेड़ में भी कोई परिवर्तन नहीं दिखाई देता था।

क्या कहा परिवर्तन ? वह दुष्ट प्रमोद बहुत परिवर्तन—परिवर्तन किया करता था। सदा कहा करता था— "भाई हरबंस, वही वही-पन के मारे जिन्दगी में एक उबकान-सी आ गई है। वही मित्र, वही रिश्तेदार, वही मकान, वही सड़क, वही सब कुछ ! रोज सब वही के वही। उहके मुँह से यही निकलता था, अब कुछ हो जाना चाहिए।" पर अब देख लो, परिवर्तन नही घोर परिवर्तन, भीषण परिवर्तन ने एक बवंडर की तरह आकर सब का सब बदल दिया है। लोगों को शायद आँख झपकाने का भी मौका नही मिला होगा और परिवर्तन की इस आँधी ने उन्हे घर से बेघर बना दिया। पक्के घरों में रहने वालों को आज तम्बू भी नसींब नहीं हैं ? हमारी जगह-जमीन, हमारा घर, हमारा देश पाकिस्तान कहलाने लगा है। मुझे विश्वास है कि यदि अब कहीं प्रमोद मिला तो इस परिवर्तन की चर्चा करने हुए उसके आँसू न सूखेगे और तब हम उसे उन विगत दिनों की ही महिमा गाते पाएँगे। कारण मुझे पता है कि परिवर्तन किसी को भी पसन्द नही है। मुझ से वह सदा बहस किया करता था। प्रमोद का स्मरण आते ही हरबंस की आँखे भर आई—कंठ रुँध गया। वह सोचने लगा, "पता नहीं बेचारा कहाँ है। हिन्दुस्थान आ पाया कि नहीं। मुझे सन् ४७ की पहली, जनवरी खूब याद है। हम दोनों जाकर कैलेंडर खरीद लाये थे। प्रमोद उसे मेरी मेज के सामने लटकाकर खूब हँसा था। हम दोनों को स्वप्न मे भी इस बात का अनुमान नही था कि इस साल के अन्त होने के पहले ही एक नया इतिहास बनेगा परिवर्तन का इतिहास!

समय देवता को अपना 'लेफ्ट-राइट' 'लेफ़्ट-राइट' वाला मार्च तो कभी भूलता ही नहीं—चलता ही जाता है; बस चलता ही जाता है। आज तो मुझे पहली जनवरी की प्रमोद की वह हँसी याद आ रही है और याद आ रही हैं उसके बाद घटित होनेवाली समस्त घटनाएँ !

फिर उसने अपना बायाँ हाथ उठाकर देखा। उसपर एक नीली लकीर खिंच गई थी। असल में हुआ यह कि जब वह ट्रेन में बैठा रक्षा का स्मरण कर रहा था तब उसने अपना हाथ खिड़की के नीचे रख लिया था। लाहौर-स्टेशन पर अचानक उसके हाथ पर खिड़की का शटर गिर पड़ा था ! उस क्षण दर्द के मारे वह सिकुड़ गया था। इस दर्द के स्मरण के साथ ही रक्षा की भी याद आई। वह हड़बड़ाकर उठ बैठा और इधर-उधर देखने लगा। उसे ऐसे लगा मानो रक्षा उसे जोर-जोर से बुला रही है। वह उठकर खड़ा हो गया और इधर-उधर टुकुर-टुकुर देखने लगा पर कोई नही दिखाई दिया। वह बैठ गया और अपने मन को समझाकर यथार्थ को पहिचानने की चेष्टा करने लगा।

"मैं तो एक रेफ्यूजी कैम्प में हूँ। अपनी प्यारी रक्षा को तो मैं मुलतान में ही छोड़ आया।"

हरबंस ने फिर एक लम्बी साँस ली, घास पर लेट गया और पिछली बातें फिर एक बार उसके मानस-पट पर सिनेमा के चित्रों की भाँति आने लगीं।

मैं रोज सुबह उस चौराहे पर रक्षा का इन्तजार करता था रक्षा आती तो हम दोनों हँसते-बोलते कालेज जाते। शाम को कालेज के गेट पर इन्तजार करता तो वह गर्ल्स कामन रूम की चिक के आड़ से देखकर निकलती हँसते-बोलते हम वापस घर जाते। रक्षा और मैं उस दिन इकट्ठे कालेज में भरती होने गये थे।

वह थर्ड-इयर में और मै फिफ्थ में। उसने अंग्रेजी के साथ हिस्ट्री

ग्रौर पालिटिक्स ली ग्रौर मैंने हिस्ट्री। उसका झुकाव पालिटिक्स की ग्रोर था ग्रौर मेरा हिस्ट्री की ग्रोर, इसीलिये तो हम दोनों में सदा हिस्ट्री-पालिटिक्स पर बहस छिड़ जाती थी। वह सदा कहती थी पोलिटिक्स ग्रॉफटुडे इज हिस्ट्री ग्रॉफ टुमारो' तुम हिस्ट्रीवाले पालिटिक्स वालों का जूठन ही घोंटते रहते हो। मैं कहता 'रक्षा, तुम समझती क्यों नहीं कि हिस्ट्री ग्रपनी जगह है, पालिटिक्स ग्रपनी जगह। कोई बड़ा ग्रौर कोई छोटा नहीं। पर वह किमी तरह हार न मानती। बहस करती हा चली जाती थी। जब कभी इस तरह की बहस कालेज जाते या ग्राते समय हो जाती तो वह उस बहस में बिल्कुल खो जाती ग्रौर ग्रपनी किताबें गिराती तथा रास्ते की झाड़ियों से चुनरी को ग्रटकाती चलती ग्रौर मैं ? बहस का सही उत्तर देने के बदले रास्ते भर उसकी किताबें इकट्ठा करता, उसकी चुनरी छुड़ाता चलता। एक दिन तो मोटर के सामने ग्राते-ग्राते बच गयी। मैं ने ऐन समय पर उसका हाथ पकड़कर ग्रपनी ग्रोर खीच लिया था। मोटर निकल जाने के बाद मुझे देखकर वह कैसी प्यारी हँसी हँस गयी थी। उस दिन मैने कह ही तो दिया कि लड़कियों को लडकों द्वारा रखवाली न मिले तो वह जी नही सकती सुनते ही उसने जवाब दिया—'शुक्र भेजो कि हम लड़कियाँ इसका तुम्हें ग्रवसर दे दिया करती हैं। नही तो तुम तड़प-तड़प कर रह जाग्रो ग्रौर ग्रपनी मेज पर सिर टेके रोते नजर ग्राग्रो।' उस दिन जब मैं उसके घर पर उसका परीक्षा फल सुनाने गया था, तो माता जी बोलीं—'ग्ररे रक्षा' हरबंसा की किताबें रख लेना। वह ग्रब एम० ए० मे जायेगा तो उसे उसकी जरूरत नही होगी।' सुनते ही वह चट से बोली—'मैं किसी की जूठन कभी न लूंगी ग्रौर हरबंस की तो कभी भी नहीं।'

पता नही, हम दोनों में प्यार कैसे हो गया। मुझे कुछ ऐसा लगता है कि लोगों का यह कहना भूल है कि समान स्वभाव वाले ही ग्रापस में

प्रेम कर सकते हैं। में उदार हूँ परन्तु वह गम्भीर स्वभाव की है वह मर्यादा पर जान देती है और मैं उसे आडम्बर समझता हूँ हम दोनों के सामाजिक विचार भी नहीं मिलते मुझे मजदूरों से सहानुभूति है, मैं नारी के बँधे-बँधे जीवन को बुरा समझता हूँ, समाज के मुठ्‌टी भर उच्चवर्ग वालों से मुझे घोर घृणा है। उसको इन बातों से विरोध था या यों कहना ठीक होगा कि वह इन सब प्रश्नों पर विचार करना भी बेकार समझती थी। हमारे व्यक्तिगत जीवन में भी अन्तर था। मेरे पास एक बहन और बूढ़ा बाप, घर का खर्च मेरे ट्यूशन और बाप के पेन्शन से चलता था, परन्तु वह एक सम्पन्न मध्यवर्गीय दम्पति की इकलौती बेटी थी। इतनी विषमताओं पर भी हम दोनों मे प्रेम हो कैसे गया! आए दिन हम दोनों में मतभेद भी बड़े जोरों से हो जाया करता था परन्तु यह भी था कि उसके रूठते ही मै बिना किसी शर्त के हथियार डाल देता वह हँस पड़ती, बस सब ठीक हो जाता।

इन विचारों में निमग्न हरबंस वहीं घास पर पड़ा-पड़ा मुस्करा पड़ा और करवट लेकर घास को एक-एक करके तोड़ने लगा। जगली घास भी एक मुसीबत होती है। बिल्कुल जगलियों की तरह चुभती रहती है। रक्षा के घर वाले लान पर यही घास मखमल की तरह लगती थी। उस लान पर तो मैने पिछली होली के दिन उसे कसकर पकड़ लिया था और खूब रंग मल दिया था लाख छुड़ाने पर भी वह मुझ से न छूट पाई थी उस दिन उसने हार मान ली थी।

एक और भी दिन उसने हार मानी थी—जब हम दोनों वर्षा के मारे कहीं बाहर नहीं जा सके थे, और बैठकर हिस्ट्री के बारे में अपना-अपना ज्ञान आजमा रहे थे। यह तय हुआ था कि कई नामों की गोलियाँ बनाकर डाल दी जाँय और फिर आँखें बन्द करके एक गोली उठाई जाय। जिस किसी का भी नाम निकले उसी के विषय में पूरा वृतान्त

कह सुनाया जाय। ऐसा ही हुआ। गोली उठाकर खोली गई तो नाम निकला दाराशिकोह का। नाम पढ़ते ही वह चट बोल उठी—'दारा औरंगजेब का बड़ा भाई और शाहजहाँ का बेटा था।' मैंने तो ठान रक्खा था उसे हराना, और इसीलिये कह बैठा—'केवल बाप-भाई का नाम बताने से क्या होता है? सन्-संवत् भी सबको मालूम ही होते हैं। इसके अतिरिक्त भी कुछ हाल बताओ तब जानें।' सुनते ही उसने अपनी भौंहें चढ़ाते हुए कहा—'इतना अकड़ते क्यों हो? तुम्हीं क्यों नहीं बत ते।' फिर मै उसे समझाता हुआ कह चला—'दारा के तीन छोटे भाई थे। मुराद, शुजा और औरंगजेब। दो बहने थी—कज्जनआरा और जहाँनारा।'

यह सुनते ही मुँह चिढ़ाते हुए वह बोली—'वाह! क्या बड़ा तीर मारा है!'

सुनते ही मेरे जी में आया कि मैं उसे कोई ऐसी बात सुनाऊँ जो हिस्ट्री की समस्त किताबों में शायद ही कहीं मिले। मैंने कहा—'अच्छा लो, एक नई बात सुनो! यदि यह बात तुम्हें पहले से मालूम न हो तो हार माननी पड़ेगी।' वह सिर हिलाकर शर्त मान गयी। मैंने कहना शुरू किया—'एक बार गर्मी बिताने के लिये दारा काश्मीर जा रहा था। जब वह अम्बाले से ३५ मील की दूरी पर तराबड़ी के गाँव में पहुँचा तो उसे खबर मिली कि उसके पहली संतान उत्पन्न हुई है और वह भी लड़का। जब कोई पहली बार पुत्रवान् बनता है तो उसे स्वभावतया बड़ी खुशी होती है। दारा की खुशी का भी ठिकाना न रहा। वहीं पर खड़े-खड़े उसने निश्चय किया कि वह उस जगह पर मुसाफिरों के लिये एक सराय बनवाएगा। हिन्दुस्थान का भावी सम्राट् कुछ चाहे और भला वह न हो? इरादा ठानने की देरी थी कि वह काम शुरू हो गया। दारा की खुशी को देखकर कारीगरों का भा

उत्साह बढ़ा और जब वह सराय बन कर तैयार हो गयी तब एक छोटा किला-सी लगने लगी। जब तक वह सराय बन कर तैयार न हो गई दारा वहीं रुका रहा और उसके बन जाने पर ही वहाँ से आगे बढ़ा।'

रक्षा ने इन बातों को बड़े ध्यान से सुना। सुनते समय वह मंत्रमुग्ध की भाँति बैठी रही। मानो उसके हृदय में भाँति-भाँति के विचार उठते रहे हों। मेरी कहानी समाप्त करने पर उसने एक लम्बी साँस ली तथा बिना किसी प्रकार की खिन्नता या विरोध प्रकट किये हार मान ली।

हरबंस इन्हीं बातों को याद करते-करते उठकर बैठ गया। गोधूल का समय हो गया था। मन्द-मन्द हवा चल रही थी। कैम्प की भीड़-भाड़ और चहल-पहल के कारण आसमान पर धूल छा गयी थी। परन्तु, वायु में कुछ कुछ ठंडक भी लगने लगी थी। हरबंस वहाँ पड़ा-पड़ा फिर ध्यान-मग्न हो गया और अतीत की दुनिया मे जा पहुँचा—उस दुनिया मे जो अब इस रेफ्यूजी-कैम्प के बाहर मैदान में लेटे हरबस के लिये एक धुँधले स्वप्न की भाँति बन गयी थी, जिसकी याद में उसे टीस—एक अव्यक्त पीड़ा-सी अनुभव हो रही थी। उसे फिर याद आई इसी तरह की एक साँझ को जब रक्षा ज़िद पकड़ गई थी कि वह माचिस का टेलीफ़ोन बनायेगी और टेलीफ़ोन के दो सिरों को मेरे और अपने घर के छत पर बाँधेगी। तब वह आठवी मे पढ़ती थी। रोज मुझसे हिसाब सीखने आती। उसके दिमाग में हिसाब तो कभी चढ़ सकता नही था। उसकी वह दोनों चोटियाँ—उस पर बँधे लाल रिबन, कानों में बालियाँ...मैं कभी नही भूल सकता...नही भूल सकता... परन्तु-परन्तु......

हरबंस हड़बड़ाकर खड़ा हो गया। सहसा उसे बापू की याद आई और वह अपने तम्बू की ओर चल दिया। उसे रक्षा को अचम्भे में

डालने वाली दारा की वह कहानी याद आ रही थी ।

अम्बाले से ३५ मील की दूरी पर अचानक उसे स्मरण हो आया कि यह स्थान भी तो अम्बाले से कुछ ही दूरी पर है । क्या यह संभव नहीं कि दारा की वह सराय यहीं कहीं पास-पड़ोस में ही हो ।

उसने मन ही मन यह तय कर लिया कि वह कल सुबह ही ग्रांड-ट्रंक रोड की ओर जाएगा और तरावड़ी गाँव का पता लगायेगा ।

सारी रात हरबंस करवटे बदलतार हा । जब मन में कोई बात ठान ली जाती है और जब तक वह पूरी नहीं होती, मन को शान्ति नहीं मिलती । प्रभात होते ही वह चल पड़ता खोजने—परन्तु शाम को निराश लौटता । इसी तरह वह न जानें कितनी बेर गया और कुछ दूर जाकर फिर शाम को लौटा । परन्तु तरावड़ी गाँव का पता उसे न मिला । हताश होकर उसने यह तय कर लिया कि एक दिन वह ग्रांड-ट्रंक रोड के दाहिनी ओर ३५ मील तक जायेगा और दूसरे दिन बाईं ओर ३५ मील । इसी निश्चय के अनुसार दूसरे दिन प्रातः वह बापू से कहकर और दो दिन के लिये रोटी बाँधकर चल पड़ा...ग्राँडट्रंक रोड पर । चलते-चलते वह थक गया । परन्तु उसे न कहीं कोई आदमी दिखाई दिया और न आदमजाद, न कोई गाँव मिला न कोई खण्डहर । रात होने पर वह एक पेड़ पर बैठ गया और प्रभात होते ही फिर चल पड़ा । दोपहर होते न होते उसे कुछेक खण्डहर दिखाई देने लगे । वह उछल पड़ा ।' उस समय वह थका हुआ था, नहीं तो दौड़ने लगता । कुछ ही देर बाद वह एक खण्डहर में जा पहुँचा । इधर-उधर देखा परन्तु कुछ पता न लगा कि खण्डहर है किस इमारत का । वह छत पर जा चढ़ा और उसने चारों ओर नजर दौड़ाई । कुछ दूरी पर उसे छोटे-छोटे कुछ झोंपड़े दिखाई दिए । वह उतरकर उसी ओर बढ़ा । उन झोंपड़ों के पास पहुँचते ही उसकी भेंट एक बूढ़े से हो गई । बातें होने लगीं ।

हरबंस को उससे यह जान करके अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि यह गाँव तरावडी ही है और खण्डर दारा की सराय के हैं। जब उस बूढ़े को पता लगा कि हरबंस पाकिस्तान से आया है तो उसने उसे बड़े प्रेम से मट्ठा और तन्दूरी रोटी खिलाई। बात ही बात में उसने यह भी बतलाया कि कुछ और लोग भी पाकिस्तान से पैदल चलकर न जानें किन-किन रास्तों से तरावडी पहुँचे हैं। सुनते ही हरबंस को उन लोगों से मिलने की उत्कट उत्कंठा उत्पन्न हो गई और उसने बूढ़े से इच्छा प्रकट की कि वह उसे उनसे मिला दे। बूढ़ा हरबंस को लेकर उन लोगों के पड़ाव की ओर बढ़ा। पहुँच कर देखा कि कोई रोटी बना रहा है तो कोई चिलम पीने में मस्त है। वहाँ पहुँचते हरबंस के सामने प्रमोद आकर खड़ा हो गया। प्रमोद को देखकर हरबंस पागल-सा हो उठा। सहसा आने वाली एक भयानक आँधी ने जिन दो मित्रों को एक-दूसरे से छुड़ाकर न जाने कहाँ से कहाँ कर दिया था, उन्होंने जब अचानक एक-दूसरे को देखा तब पहले तो उन्हें अपनी आँखों पर ही विश्वास न हुआ। फिर दोनों की ही आँखो में प्रेमाश्रु उमड़ आये। दोनों एक-दूसरे के गले में लिपट गए और हृदय के बोझ को हल्का करके ही बैठे। अन्य परिचित लोग भी इन दोनों के चारों ओर घेरकर बैठ गये। अपनी-अपनी पिछली घटनायें सुनाने के बाद वे अपने भविष्य पर विचार करने लगे। तरह-तरह के सुझाव रखे गये परन्तु कोई किसी को नहीं जँचा। इसी बहस, रोने-धोने और कहने-सुनने के बीच उन्हें एक बात सूझी कि वह सब मिलकर दाराशिकोह के खण्डहर में खेती-बारी, पशुपालन और घरेलू दस्तकारी क्यों न शुरू करें। उन्होंने निश्चय किया कि सब मिलकर यदि परिश्रम करें तो उनके खाने-पहिनने तथा रहने की समस्या का समाधान हो सकता है। इस सम्मिलित उद्योग के लिये हरबंस और प्रमोद सबकी ओर से सभापति और मंत्री चुन लिये गये। पाँच

बड़े-बूढ़े पंच के रूप में नियुक्त कर दिए गए। हरबंस ने दो दिन की छुट्टी ली, अम्बाले-कैम्प को लौटा और खुशी-खुशी अपने तम्बू की ओर बढ़ा। तम्बू में घुसते ही वह स्तब्ध रह गया......सामने ही रक्षा का पूरा टबबर बैठा था, और बापू उन सबसे घुल-घुलकर बातें कर रहे थे।

हरबंस की प्रसन्नता में जो न्यूनता रह गई थी, अकस्मात् उसकी ऐसी नाटकीय ढंग से पूर्ति होती देख उसके हर्ष का पारावार न रहा। वह सबसे गले मिला। रक्षा को हाथ जोड़कर नमस्कार किया और अन्त में सबको तरावडी गाँव की बात भी सुना दी—सुनते ही सब ने तुरंत वहीं चलकर रहने का निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन अम्बाला-कैम्प से २५-३० यात्री लोग तरावडी जा पहुँचते। पहले के अमीर-गरीब अब वहाँ बराबर मेहनत करने लगे, और एक कुटुम्ब के प्राणियों की भाँति रहने लगे। रक्षा के पिता जिस हरबंस के गरीब होने के कारण रक्षा की शादी दूसरी जगह करने के विचार में थे वही अब हरबंस के गुणों पर लट्टू हुए जाते थे। दारा की उस सराय में फिर से जान आ गई। सोता हुआ खण्डहर प्रायः दो शताब्दी बाद फिर से जाग पड़ा। परन्तु फिर भी जब रात को सब मिलकर हुक्का पीते या गप-शप करते हैं तब सबकी पुरानी स्मृतियाँ जागरित हो उठती हैं और इस परिवर्तन पर आँसू भी बहाते हैं।

बदला

रात्रि का एक बजा है। अन्धकारमयी रजनी की निस्तब्धता और गम्भीर हो उठी थी। निशा अपनी रत्न-जटित श्यामल चुनरी में समस्त पृथ्वी के प्राणियों को बाँध चुकी थी। सब बेसुध हो चुके थे उसके मृदुल बन्धन की हिलोर में। परन्तु चमन छाया के हावभाव में बेसुध था उसके द्वारा पिलाई गई मदिरा के कारण बेसुध था उसके गाने और नाच में बेसुध। वह अपने आप को भूल गया, अपनी पत्नी को भूल गया, अपने कर्तव्य को भूल गया। सुरा सुन्दरी और संगीत, यही उनके जीवन की त्रिवेणी बन रही थी। और वह इसी त्रिवेणी के मध्य स्थित हो, आनन्द से आत्मविस्मृत हो, स्नान कर रहा था। विलास ही मानो उसके जीवन मन्दिर का पूज्य देवता बन कर प्रतिष्ठित हो गया था।

छाया एक वेश्या थी। जीवन की कृत्रिमता के मध्य इस विलास का व्यापार करते-करते छाया के दैनिक जीवन में भी कृत्रिमता आ गई थी। उसके हाव-भाव में हास-परिहास में, चुम्बन, आलिंगन में सर्वत्र एक कृत्रिमता का, नाना रङ्गों से रञ्जित साम्राज्य दृष्टिगोचर होता था।

कृत्रिमता ही उसके जीवन का ध्येय था। वह वेश्या थी। कमर का अभिनय ही उसके जीवन का मुख्य कार्य था। अपनी इस परिस्थिति में उसे इच्छा अथवा अनिच्छा से चुम्बन प्रदान करने पड़ते थे। अनेक बार आलिंगन पाश में बद्ध होना पड़ता था; अपने को सौंपना पड़ता था...

और इसी कृत्रिमता को पाकर चमन निहाल हो रहा था, अपना सर्वस्व छाया के चरणों पर लुटा रहा था, साथ ही साथ-बाप दादा का नाम और धन भी लुटता जा रहा था।

चमन एक सम्पन्न घर का सब से बड़ा बेटा। दादा कलैक्टर थे, पिता डी० सी० थे और चमन उसी शहर में स्थापित युनिवर्सिटी में अंग्रेजी का प्रोफेसर था। बाप-दादा के कारण चमन की युनिवर्सिटी पर धाक थी। सब मान करते थे, आवश्यकता से अधिक सम्मान करते थे। पिता के कारण उसका रजिस्ट्रार और वाइसचान्सलर से अच्छा सम्बन्ध था। शहर के बड़े घर की लड़कियाँ जो युनिवर्सिटी में पढ़ने आती थी, उससे बिना संकोच के मिला-जुला करतीं। एक प्रकार से वह इन लड़कियों का गार्जियन बन गया था। युनिवर्सिटी के लड़के उस को 'छोकरियों का एड्वोकेट कहते थे।

चमन के माता-पिता को उसके चरित्र पर बड़ा गुमान था। वे सोचते कि उनके चमन का चरित्र बड़ा ऊँचा है। वह सब लड़कियों को बहन के समान रखता था और विवाह के नाम से दूर भागता था। चमन की माँ वह दिन कभी नहीं भूलती थी जब एक भिक्षा मांगता हुआ साधु उसके घर पहुँचा और एक वर्षीय बालक चमन को देखकर उसने कहा—

'माता तेरा पुत्र महापुरुष है; पुण्य पुरुष को जन्म देकर तुम्हारा जीवन सार्थक हुआ। तेरा पुत्र साधु बनेगा और हिन्दुस्तान में उसका नाम होगा।'

चमन की मां यह बात बार-बार अपनी सहेलियों से कहकर प्रसन्न होती थी। चमन के पिता को 'यह साधु होने वाली' बात तो पसन्द न आई परन्तु हिन्दुस्तान में नाम कर जाने वाली बात पसन्द आई अतः वह भी चमन का आदर करता, मन में बड़े बड़े-विचार संजोये रखता।

चमन के माता-पिता को क्या मालूम कि वह युनिवर्सिटी की प्रत्येक लड़की के साथ रङ्ग-रेलियाँ करता हुआ अपना जीवन व्यतीत कर रहा था। अनुभव रहित लड़कियाँ वहाँ आतीं और पिताओं में परि-चय के कारण वे लड़कियाँ चमन के हाथ फँसती थीं। इस प्रकार के खेल खेलते बड़ी बदनामी हो रही थी, तो उसने सोचा कि विवाह कर लेना चाहिए क्योकि विवाह के बाद एक लाइसेन्स मिल जाता है। अतः उसने एक अमीर घर की इकलौती बेटी कमल पर कृपा दृष्टि रखी। वह बी० ए० में पढ़ती थी। इस कृपा के कारण कमल ने प्रण कर लिया कि वह चमन से ही विवाह करगी। उनके पिता भी मान गये। चमन के माता पिता भी मान गये और विवाह होगया। विवाह के पहले वर्ष में ही चमन का रूप खुल गया। कमल का मन टूट गया। उधर चमन के पिता की मृत्यु हो गई। सारी धन दौलत उसके हाथ मे आगई। धन के आधिक्य से वह पागल हो उठा था और उस पागलपन में वह छाया के चंगुल में फँस गया।

चमन की माँ और कमल ईश्वर को दिन-रात मनाने लगीं, दोनों के आँसू रोके नहीं रुकते थे। परन्तु चमन न सुधरा, न सुधरा। धर्म और ईश्वर तो न जाने इस समय कौन सी अँधेरी गुफा में मुँह छिपाये बैठे थे। दीनों के नाथ कहलाने वाला भी सम्पन्नों का नाथबन गया था।

सहन शक्ति जब सीमा का उल्लङ्घन कर जाती है, तब मानव खुल जाता है। ठोकर मारने से रजकरण भी सिर पर चढ़ जाते हैं। घन की चोटों से लोहा भी फैल जाता है। वही दशा कमल की भी हुई। उसका मन विद्रोह कर उठा।

नित्य के घोर अपमान से वह उग्र हो उठी हृदय में प्रतिहिंसा की अग्नि धधकने लगी। हृदय जल रहा था। मन में तूफान उठा हुआ था। वह सोच रही थी...मैं भी अब ठोकर खाकर किसी के टुकड़े पर जीने को तैयार नहीं। मैं क्यों और अधिक सहूँ ? पति को क्या अधिकार है कि वह सदा स्त्री पर निरंकुशता पूर्वक शासन ही करता रहे ? स्त्री पर वह कौन सी निधियाँ लुटाता रहता है कि स्त्री सब कुछ चुपचाप सहा करे ? स्त्रियों के लिये ही सारे नियम हैं, पुरुष के लिए कुछ भी नहीं ? सीतासावित्री की दुहाई दे दे कर नारी को रसातल की ओर भेजा जा रहा है। पुरुष के लिए कोई शास्त्र नहीं, कोई नियम, कोई बन्धन नहीं। सब कुछ उसकी रुचि पर निर्भर करता है। सीता सती थी, तो राम भी तो एक-पत्नी व्रतधारी थे।

नारी बदला लेगी। जैसा कोई उसके साथ करेगा, वह भी वैसा ही करेगी। आज बीसवीं सदी की नारी प्रतिशोध चाहती है। अपने अब तक के त्याग और बलिदान का बदला चाहती है, जिसको पुरुष ने उसकी कमजोरियाँ और मजबूरियाँ कहकर उपहास में उड़ा दिया। वह अब अपमान न सहेगी।

वेद, शास्त्र स्त्री को घर की रानी होने की पुकार मचाते हैं, गृह-लक्ष्मी होने की दुहाई देते हैं, पुरुष को अर्ध शरीर कहते हैं, पर आज के समाज का अधिकांश पुरुष वर्ग नारी को केवल भोग विलास की वस्तु से अधिक और कुछ नहीं समझता। वह सुन्दर वेशभूषा में स्त्री को रखता

है, तो अपने वैभव का ढिंढोरा पीटने के लिये। अपने धन पर स्त्री का अधिकार ही क्या है ? एक अँगूठी के खो जाने पर भी वह लाल-लाल आँखें कर सब के सामने उसे अपमानित कर बैठेगा। और अपने आप घर की जमा पूँजी, गहने आदि सब वेश्या के चरणों पर डाल सकता है। परन्तुपत्नी कुछ कह नही सकती घर की नारी की क्या यही दशा होती भी बुरी है। दासी उपता कर नौकरी छोड़ सकती है, स्त्री ऐसी सस्ती है ? ऊँहूं...गृहलक्ष्मी दासी से नौकरानी है कि कहीं जा ही नहीं सकती। कितना भी मारो, फटकारो, पड़ी रहेगी दो रोटी के लिये, इस डर से कि समाज क्या कहेगा। चुपचाप सहती रहो सब अत्याचार। चढ़ा दो जीवन की बलि। बाद में संसार दो बूँद आँसू टपका कर कह देगा बड़ी अच्छी थी बेचारी।'

नहीं, कमल बलि नहीं चढ़ेगी। वह बदला लेगी। जिस प्रकार अकेले चमन ने अपने भाई, बहन, माँ, पत्नी को बेघर बार बना दिया उसी प्रकार कमल सब के सहयोग से चमन को बेघर बार बना देगी। अगर चमन प्रेम...विवाह का तिरस्कार कर सकता है तो वह भी तिरस्कार करेगी वह बदला लेगी और खूब कस कर लेगी।

...परन्तु इस निश्चय को कार्यरूप देना बडी समस्या थी। तरह-तरह की सूझ उठी परन्तु कोई जँची नहीं क्योंकि कमल जानती थी कि नीच को नीचता से ही पकड़ा जा सकता है। उसने एक योजना बनाई वह बाजार गयी और पाँच हजार के गहने खरीदे परन्तु प्रत्येक गहने पर एक निशान खुदवाया। उस दिन के बाद जब उसके पति शाम को तैयार होकर जाते तो उसे छाया को देने के लिये एक गहने का डिब्बा पकड़वाती और जब उसके पति छाया के कोठे से लौटते तो उनका स्वागत करती, छाय की प्रशंसा करती और बड़े लाड-प्यार से

सुलाती कमल का यह व्यहार चमन को बहुत प्रिय लगा क्योंकि शराब का नशा लाड़-प्यार के साथ जा सकता है। परन्तु विद्रोह के साथ नहीं कुछ दिनों बाद कमल ने एक बैंक के 'ब्लेक' चेकों पर दस्तखत करवाये चमन ने बिना पूछे पाछे कर दिये। इसी प्रकार छः महीने के अन्दर उसने अपने पति के चार बैंकों मे जमा पैसा अपने नाम पर कर लिया उसके बाद वह बाप दादा का मकाम जमीन अपने नाम कराने के चक्कर में पड़ गई। उसकी एक सहेली के पति वकील थे। उनकी मदद से उसने सारा कागज पत्र तैयार करवाया और एक दिन छाया को बहुत बढिया सैट देने के बदले मे उस पर दस्तखत करवाया । घर भी उसके नाम हो गया अब रह गया उसके दहेज मे आया हुआ घर और मोटर। एक महीने की मेहनत पर उन दोनो को भी अपने नाम पर कर लिया। जब सब कुछ उसके नाम पर हो गया तो रहा, दस-पन्द्रह हजार के गहने जो आहिस्ते-आहिस्ते छाया के हाथ जा चुके थे उसको हथियाने का तरीका।

बहुत सोचने-विचारने के बाद उसने एक योजना बनाई कि-वह अपने पति का जन्म-दिवस धूम-धाम से मनायेगी। शहर के बड़े बड़े लोग बुलाये जायेंगे। शराब पार्टी होगी। छाया का नाच होगा। आदि-आदि इत्यादि।

जहाँ पैसा होता है वहाँ पर योजना को कार्यान्वित करना कुछ कठिन नही है। जन्म-दिवस आया मकान को दुलहन की तरह सजाया गया। कमल को साँस लेने की भी फुरसत नही थी सास जी ने जब कमल के ढंग देखे तो उसे अच्छा नही लगा। वहछत के कमरे में जाकर भजन कीर्तन मे लग गई। कमल ने एक कमरा खूब सजाया, उस कमरे मे दो बिस्तर लगवाये बढ़िया अलमारी और उस

अल्मारी पर एक ताला तोड़ कर लटका दिया।

प्रश्न आरम्भ हुआ, सौ-डेढ़सौ लोगों ने खाना खाया। फिर नाच आरम्भ हुआ। लोग नाच देखते जाते, वाह-वाह करते जाते और शराब पीते जाते। समय बीतने लगा, लोग शराब के मद में चूर वहीं उल्टे-सीधे लेट गये। कमल ने छाया और चमन को उस खास सजे कमरे में ले जाकर छोड़ दिया। किवाड़ बन्द करके ड्राइवर को चौकीदारी पर लगा दिया। सुबह के नौ बजे छाया ने किवाड़ खोले और ड्राइवर से घर जाने की इच्छा प्रकट की। ड्राइवर ने कहा—'हजूर इसी काम के लिये तो यहाँ बैठा हूँ।' छाया मुस्कराई और ड्राइवर के पास हो ली। छाया के जाते ही कमल ने पुलिस स्टेशन में फोन किया कि छाया उसके सारे गहने लेकर भाग गयी, जश्न की थकावट के कारण वह और उसके पति सो ही रहे थे जब वह दुर्घटना हो गयी।

पुलिस इन्सपेक्टर आया साथ में कई और पुलिसमैंन आये। कमल से गहनों की लिस्ट लेकर, गहनों पर खुदे हुए निशान का चित्र लेकर वे छाया के घर गये और सबको गिरफ्तार कर लिया। छाया ने बहुत कहा कि वह कुछ भी चुरा कर नही लाई परन्तु पुलिस नही मानी। हार कर उसे अपना गहनों का सन्दूक खोलना पड़ा। पुलिस कमल की दी हुई लिस्ट और खुदे हुए निशान के सहारे गहने चुन कर पोलिस स्टेशन ले गयी।

चोरी के जुर्म मे छाया कैद मे पड़ गयी। केस चला। पैसों की आवश्यकता ने चमन से बेंकों का चक्कर लगवाया तो उसे पता चला कि उसके सारे पैसे खत्म हो गये मकान गिरवी रखवाने की कोशिश की तो पता लगा कि घर भी उसका नहीं रहा। अपने गुस्से में उबल कर वह कमल को मारने पर उतारू हो गया। कमल ने पहले ही अपने

और घर की रखवाली के लिए खुफिया पुलिस का इन्तजाम कर लिया था। जैसे ही चमन कमल को मारने के लिये उसके कमरे में घुसा खुफिया पुलिस ने पीछा किया। चमन ने हाथ में पकड़े हुए छुरे को ऊँचा किया ही था कि वह पकड़ा गया कमरे में खसर-खसर के कारण कमल की आँखें खुलीं। खुफिया पुलिस ने घात सुनाई। कमल ने इस बात को दबाने को कहा और कफी धन देने का वचन दिया। चमन अपने ही मकान में एक कमरे में बन्द कर दिया गया।

दिन कठे। छाया के केस का दिन आया कमल की ओर से शहर का प्रसिद्ध वकील कुन्दनलाल बोल रहा था बहसबाजी हुई फिर फैसला सुनाया गया। छाया को दस साल कैद की सजा मिली और कमल को उसके गहने मिल गये।

चमन नजरबन्द कैद में पड़ा-पड़ा अपनी करतूतों पर विचार कर रहा था। अगर कमल उस पुलिस को इनाम देने का वचन न देती तो वह कैद में बन्द हो जाता, फिर कितनी बदनमी होती। छाया के कारण वह कहीं का नहीं रहता परन्तु कमल ने कितनी सतर्कता से काम लिया आदि-आदि। कमल रोज चमन के पास खाना लेकर जाती, चाय लेकर जाती और नई दुलहन की तरह वर्ताव करके चली आती। चमन को यह सब बहुत अच्छा लगा। वह छाया को भूलने लगा और कमल को चाहने लगा। उसका मन तर्कवितर्क करता। छाया को सब कुछ देने के बाद कुछ नहीं कहती। मैं उसकी हत्या करने गया फिर भी उसने मुझे जेल जाने से बचाया और अब भी मुझे कितना चाहती है...

जब मन एक प्रकार का विचार बार-बार दोहराता है तो उसके कार्य भी उसी प्रकार के हो जाते हैं। चमन के व्यवहार में परिवर्तन आने लगा। जिस माँ से वह एक साल से नहीं बोला उससे बोलने लगा।

कमल उसके मन में पुलिस का डर बैठा कर घर से बाहर न जाने देती। जब किसी को मधुर वातावरण में बैठ कर अपने जीवन पर विचारने का मौका मिलता है तो वह सुधारने का प्रयत्न करता है। चमन ने भी तय कर लिया कि वह फिर किसी वेश्या के चक्कर में न पड़कर कालेज की प्रोफेसरी में मन लगायेगा। इस विचार ने कमल के दिन फेर दिये।

स्वप्न

"अरे श्यामू ओ श्यामू, पता नहीं कहाँ छुपा बैठा रहता है। अरे भई हो भी हो या नहीं"... कहता हुआ विजय भीतर आया।

श्यामू सामने ही कोच पर बैठा हुआ विशेष तन्मयता के साथ कुछ लाइनें गुनगुना रहा था। जैसे उन लाइनों के साथ उसके जीवन का कोई विशेष लगाव रहा हो, "अरे भाई तुम तो जाग रहे हो, फिर सोतों का सा प्रलाप क्यों कर रहे हो?"

श्यामू चौंका। बोला "कौन? अच्छा आओ भाई विजय आओ कैसे दर्शन दिये।"

श्यामू भगवान् ने ऐसी सूरत ही नही दी जो किसी को दर्शन दें।"

"नही विजय, ऐसी तो कोई बात नही है। तुम कितने सुन्दर हो ये तो किसी दिन अपनी उनसे......"

"जाने दो भाई इन सूखी बातों को। कुछ मतलब की...खाने-पीने की बात करो... छुट्टी के दिन की दुपहर यों ही खोने की थोड़े ही होती है। आओ चलो सामने रेस्टोरेन्ट में ही चलकर कुछ देर बैठे...

बात काटता हुआ श्यामू बोला "मूड नहीं है।"

"मैं कब कहता हूँ कि "है"। चलो फिर आप ही बन जाएगा।

"अच्छा तुम क्या यों मानने वाले हो चलो। कहता हुआ श्यामू उठ खड़ा हुआ और दोनों एक कोने की सीट पर जाकर बैठ गए। बैरा आर्डर लेकर चाय और मिठाई लाकर सामने रखकर चला गया।

"श्यामू क्या कारण है, मैं तुम्हे कुछ दिनो से खोया सा देखता हूँ अब तो तुम्हारी ख्याति भी बहुत हो चुकी है, परन्तु फिर भी तुम सदा अपने मन मे किसी अभाव को समेटे एक अजीव आत्मग्लानि सी अनुभव करते रहते हो। श्यामू क्या मुझसे भी छिपाने की कोई बात है?"

"नही विजय ऐसी तो कोई बात नही। मैने आज तक तुमसे क्या छिपाया है, जो तुम ऐसी कल्पना करो"।

"हाँ बचपन मे तो यही बात थी, पर अब तुम कुछ गम्भीर से रहते हो। और फिर मुझे बाहर भी बहुत दिनों से रहना पड़ा। उन दिनों में मैं एक ही बार तुम्हारे पास आ पाता था, जब तुम्हारे सिर मे चोट लगी थी।"

चोट का नाम सुनते ही श्यामू का माथा ठनका और वह बोल उठा—

"विजय? अब वह चोट तो अच्छी हो गई है, पर उसका गहरा निशाना रह गया है। देखते हो माथे पर।"

श्यामू मैं जब भी तुम सेउस चोटका कारण पूछता हूँ, तुम टाल जाते हो। आज तुम्हे यह सब स्पष्ट करना ही होगा।

"विजय! जो बीत गई सो बीत गई। अब उनके दुहराने से क्या? उन्हे यूँ ही रहने दो तो अच्छा होगा।"

"विजय आज तो बताना होगा और तुमने एक दिन इसके बताने का वायदा भी तो किया था।"

"सो तो मुझे याद है, पर क्या करोगे सुनकर।"

"इसे हम जानते हैं कि हम क्या करेंगे और क्या नहीं करेंगे। तुम्हें

सुनाना होगा नहीं तो हम भूख हड़ताल कर देंगे ।

"विजय बचपन का साथी था । श्यामू उसकी हठ न टाल न सका और बोला—इसे सुनकर आनन्द नहो दुःख ही मिलेगा ।"

"अरे मिले ही गा, तो, कुछ छिन तो नहीं जायगा और दुःख उससे तो जीवन सहानुभूति और समता मिलती है, कितनी मूल्यवान् !"

"अच्छा विजय जैसी तुम्हारी इच्छा, कुछ कहते नहीं बनता..."

"आज से पांच वर्ष पूर्व जब मैं प्रयाग सम्मेलन में बुलाया गया जनता की करतल ध्वनि के मध्य सभापति जी ने सम्मेलन को प्रारम्भ कर दिया। भारत प्रसिद्ध सभी कवियों ने प्राय: भाग लिया था । कुछ कवियों के पश्चात् मेरा भी नाम बोला गया । क्योंकि मुझसे पूर्व एक प्रसिद्ध कवि अपनी कविता सुनाकर गये थे; अत: आवश्यक था मैं भी कोई सुन्दर और गम्भीर रचना सुनाऊँ । मैने ऐसा ही किया । मैं कविता समाप्त कर मच के पिछले भाग पर जा बैठा । मुझे जनता का कोई उत्साह नहीं मिला । कदाचित् वे उस कविता को समझ ही न सके हों । वहुत समय बाद सम्मेलन समाप्त प्राय: हो गया; परन्तु कुछ लोग अब अपने-अपने विशेष कवियों की कविताएँ सुनने का आग्रह कर रहे थे और सभापति जी इसे यथासम्भव पूरा भी करते जाते थे । श्रोताओं में से न जाने किसने मेरा भी नाम पुकारा । मैं सतर्क हो गया क्योंकि जहाँ मेरी कविता पसन्द न की गई वही मेरी कविता सुनने की फिर इच्छा ! मैं यह सब सोच ही रहा था कि सभापति जी ने मेरा नाम बोल दिया । मैं पुन: मंच पर आया और जनता के मन की दो तीन कविताएँ सुनायीं सुबने वालों ने तालियाँ बजा-बजा कर सुनाना भी दुरूह कर दिया । मैं फिर-फिर मंच पर बुलाया गया और इसमे इतना समय हो चुका था कि सम्मेलन समाप्त कर दिया गया । सम्मेलन समाप्त हुआ और मैं भी अपने निवास को लौट आया । जैसे जैसे मेरे कदम घर की ओर लौट

रहे थे, मेरे हृदय के विचारों पर विचार गिर पड़ते थे। प्रत्येक विचार के प्राण में कोई न कोई प्रश्न था। जनता में से मेरा नाम किसने पुकारा था ? संभव है वह नाम लड़कियों की ओर से पुकारा गया था। वह कौन थी; जो मेरे प्रत्येक पद पर रस-विभोर हो एक विशेष स्थिति पर पहुँच जाती थी। उसने जाते समय भी मुझे आदर से देखा था। उसकी आँखों में नमन था। परन्तु यह हो कैसे सकता है ? वह परिचितों की भाँति देखना, पर मैंने तो आज तक उसे देखा ही नहीं।"

इन्हीं विचारों मे रात बीती, दिन बीता और संध्या आई उसी समय गाड़ी चलती थी मै गाड़ी में बैठा और अपने घर आ गया।

वैसे तो कोई बात नही थी पर मै एक विशेष अनुभूति में जा फँसा था।

"एक दिन संध्या को डाकिया आया और एक पत्र डाल गया पत्र को देखते ही अनायास मेरे हृदय में अपरिचित अतृप्ति जागने लगी मैंने पत्र खोला...

बड़े प्रयत्न से सभा के संयोजक जी द्वारा तुम्हारा पता मिला उस दिन हमारे अनुरोध पर आपने जो कवियाएँ सुनाई उनके लिए धन्यवाद परन्तु आपको कष्ट इस लिए दिया जा रहा है कि कृपा कर उस कविता को जो आपने पहली बार सुनाई थी भेजने की कृपा करें। हम अपनी "कालेज पत्रिका" में उन्हे प्रकाशित करना चाहते हैं।

कष्ट के लिए क्षमा

"इन्दु"

११ प्रयाग।

मैंने पत्र पढ़ा और न जाने कितने प्रश्न एक साथ मेरे मस्तिष्क में चक्कर काट गए।

"वह कौन है ?"

"कालेज पत्रिका ?" तो क्या कालेज में पढ़ती है ? "नहीं कोई ग्रन्थ भी हो सकती है ?" कितनी सुन्दर लिपि है। क्या वह "स्वयं भी..."

पर मुझे इससे क्या। तू साधक है तेरा कर्तव्य है केवल साधना और यही तेरा अधिकार भी।"

तो क्या उसे कविताएँ न भेजूँ ? पर ऐसा क्यों ? यह तेरी आत्म-दुर्बलता है। दुर्बलता नहीं मैं भेजूँगा और पत्रिकाओं को भी तो भेजता हूँ।"

रात हुई मैं तो गया और मैंने एक दुस्वप्न देखा ... "मैं एक ऐसे स्थान में जा फँसा हूँ जहाँ जिस स्थल को मैं समतल समझता हूँ वह विषम है जहाँ सूखा दीखता है वहाँ जल भरा है फूलों की मालाएँ सर्पों जैसी हैं और भयंकर सर्प पुष्प हार से सुन्दर प्रतीत हो रहे हैं। मै घबरा उठा और सहसा मेरी आँखें खुल गई।"

"दुपहर तक बड़ा आत्म संघर्ष रहा और अन्त मे मैने एक धन्यवाद के पत्र के साथ वह रचना भेज दी। और इसके बाद मैंने अपनी रचना भेज दी। और इसके बाद मै अपनी रचनायें भेजने लगा"।

जब पत्रिका छपती तो उसकी एक प्रति मुझ तक भी आती उसमें अनेकों कवियों की कृतियाँ होती थी। कुछ दिनो से उसमें 'नीरजा" के नाम से एक नये ही प्राण को लेकर कुछ कविताएँ छपने लगी थी। उनकी अभिव्यक्ति में एक नयापन था, वेदना थी।

मैं उच्च शिक्षा प्राप्त करके आ भी चुका था और मेरा डिवीजन भी प्रथम रहा था। प्रिन्सपल साहब मुझ पर विशेष अनुग्रह रखते थे अतः उनकी इच्छा थी मैं शिक्षा समाप्त करके प्रोफेसर बनूँ।

कोई दो तीन माँस बाद मेरे पास उनका एक पत्र आया जिसमें बिना कुछ कारण बताए हुये लिखा था कि शीघ्र चले आओ दूसरे ही दिन मैंने माता जी से आज्ञा ली और मैं प्रयाग चल दिया। वहाँ जाकर

मुझे पता चला कि किसी कालेज में स्थान रिक्त है। और यदि मैं चाहूँ तो वहाँ नियुक्त हो सकता हूँ। मुझे भी यह इच्छा तो थी ही मैंने यह स्वीकार कर लिया और अगले मांस की पहली तारीख से मुझे काम करने के लिए कहा गया।

मै पहले दिन कालेज में प्रोफेसर की तरह गया। मेरी आयु तो थोड़ी थी ही। रूम में प्रवेश करते ही विद्यार्थियों ने मेरा उपहास करना चाहा और किया भी, मगर मै फिर भी जम ही गया। कुछ दिनों तक विद्यार्थी अपनी आदतों से मजबूर रहे, पर फिर वे प्रभावित हो गये।

मैं जब पोइट्री पढाता, तब मैं विशेष तन्मय हो जाता पर मुझ से भी अधिक तन्मय कोने में...बैठी एक लड़की हो जाती। उसकी इस तन्मयता ने मेरे हृदय पर, उसकी भावुकता और उसके विशेष व्यक्तित्व की छाप डालती थी। लैक्चर के समय मेरा मनयोग उसी से रहता। एक दिन हमारे पड़ोसी ने हम सबको चाय पर अपने घर बुलाया। कदाचित् उनके कोई उत्सव हो। मुझे पता नहीं। परिचय मेरा तो क्या था, पर रमेश को वजह से मुझे भी उसकी चाय में भाग लेना पड़ा।

मेरे मित्र वहाँ के पुराने रहने वाले थे और बड़े मिलनसार थे। हम गए और उनकी बैठक मे बैठ गये बैठक महापुरुषों—जिनमे अनेकों कवि भी थे—के चित्रों से सजी थी दो-तीन अलमारियाँ थीं, जो पुस्तकों से सजी थी। रमेश ने मुझसे भी ऊपर चलने को कहा, पर में आग्रह करके वहीं बैठ गया एकान्त में।

कुछ ही देर बाद पीछे से आवाज आई "आप भी चलिए ना" मैं चौंक उठा। आवाज कुछ पहिचानी और कुछ अनजानी सी थी। ज्योंही पीछे मुड़कर देखा, सहसा मुँह से निकल गया—तुम। जैसे वह भी यही कहना चाहती हो, पर पुनरुक्ति समझ कर चुप रह गई हो।

"तो" आप यहाँ रहती हैं।"

"जी हाँ '

"मैं बहुत दिनों से साथ ही के मकान में रहता हूँ, पर आज से पहिले तो कभी नही देखा है।"

"इधर तो मैंने भी आपको पहली बार देखा है।" हम दोनों हँस पड़े।

'अरे भाई। प्रोफेसर साहब, आग्रोगे भी या नहीं। रमेश ने ऊँचे स्वर में कहा। मैं भी बुलाने वाली के पीछे-पीछे चल पड़ा। उसके अधरों पर स्मृति का एक सागर उमड़ रहा था जिसे वह न जाने क्यों दबाए रखना चाहती थी पर फिर भी उसका प्रयास व्यर्थ हो रहा था। कुछ ही देर में हम उस कमरे मे पहुँच गए, जहाँ खाने की मेज पर रमेश के साथ कई और सज्जन भी विराजमान थे। वे सभी मेरे और मैं उनका अपरिचित था। अतः परिचय कराना प्रारम्भ हुआ। क्रम से उनकी भी बारी आई तो अभी कुछ देर पहले मुझे बुलाकर लाई थी।

"आपका नाम है कुमारी इन्दु प्रभा, पर कहते सब आपको इन्दु ही हैं..."

"इन्दु" मेरे मन में गूँज गया। साहित्य में आपका विशेष लगाव है और इसीलिए आप अपनी कालेज पत्रिका की संपादिका भी है।

"संपादिका भी हैं" फिर एक बार मन में गूँज सा गया।

मेरा भी परिचय कराया गया। और उनके पिताजी को जब यह पता चला कि मै उसी काल़ेज में प्रोफेसर हूँ, जिसमें उनकी बेटी इन्दु पढ़ती है और यही रहता हूँ तो वे बोले—

"ओ आप तो निकट ही के निकले, आया कीजिये कम से कम रविवार को अवश्य ही, और अब से आपकी रविवार की चाय भी यहीं हुआ करेगी। कदाचित् उन्होंने मुझे ऐसा अपनी पुत्री के प्रोफेसर होने के कारण ही कहा हो।"

चाय समाप्त होने पर मैं फिर आने का वचन देकर लौट आया। रमेश ने मुझसे अकेले घर चलने को कह कर आप किसी कारण से बाहर चला गया। और मुझे अपने कमरे में कुछ प्रतिध्वनियाँ सी सुनाई देने लगीं।

"क्या वह यही इन्दु ?"

"नहीं"

"क्यों ?"

"क्या वह नाम इस एक का ही हो सकता है ?"

"पर उसी ने ही तो कविता अपनी पत्रिका मे प्रकाशित करने के लिये ही मँगाई थी। और ये भी तो संपादिका है। कदाचित् वह पत्रिका भी इसी कालेज की थी।

"इन्दु ! कितना सुन्दर नाम है"

"पर यह निश्चय कैसे हो कि यह वही इन्दु है।"

"मैं उसकी लिपि पहिचान सकता था, क्योकि कदाचित् उसका पत्र मेरे फाइल में था। मैंने अपनी फाइल को उलट-पलट कर उस पत्र को खोज ही लिया। और उसकी लिपि को अपनी आँखों मे जमाकर मैं उमकी लिपि को देखने के प्रयत्न करने लगा। यह प्रयास मैंने कालेज मे भी किया, पर सफल न हो सका। आखिर इसी प्रकार सात दिन बीत गये और फिर रविवार आगया। कदाचित् हम तो इसी रविवार को उनके यहाँ चाय पर न जाने पर एक दिन पहिले ही उन्होंनें अपने नौकर को हमें अपना वादा याद दिलाने के लिए भेज दिया था। हम विवश थे अतः चाय पर चले ही गए। उधर मैं तो जाना चाहता ही था अतः मैंने भी कोई विशेष हठ न किया। अब की बार बैठने का प्रबन्ध दूसरे स्थान पर था। बिल्कुल एक सादे से कमरे में।

चाय प्रारारम्भ हुई और हम सब परस्पर कुछ बात करते हुए धीरे-

धीरे चाय पीने लगे। बातों का सम्बन्ध था आधुनिक राजनीतिक स्थिति से। पर मेरा सदा से ही यह विषय कुछ अप्रिय सा रहा है अतः यह हमारा अधिक समय न ले सका। बातें कहीं की कहीं जाने लगीं और अन्त में उन्होंने भारतीय और पाश्चात्य दर्शन पर आकर विराम ग्रहण किया। यह तो मेरा विषय था ही। बातें बढ़ने लगीं और समय बहुत बीत गया।

रमेश को कहीं जाना था। दीवार पर टँगे क्लाक को देख कर वह एक दम चौंक उठा। और बीच ही में बात काटकर उसने अपना चलने का प्रस्ताव रख दिया और बोला भाई, किसी दूसरे दिन के लिए भी कुछ रहने दो, नहीं तो फिर हर रविवार की चाय-वाय नहीं मिलेगी हम सब एक साथ हँस उठे और बातों का प्रवाह रुक गया हमने नमस्कार किया और वहाँ से विदा ली।

उनके पिताजी मुझे दर्शन का इतना ऊँचा विद्वान् समझ बैठे जितना कि मैं नहीं था। और इसी लिए अब जब भी मैं कालेज से आता, वे मुझे बुला लेते दर्शन में उनकी बहुत रुचि थी। घन्टों-घन्टों बातें होतीं और अन्धेरा होने पर मैं घर लौट आता।

कुछ दिन तो नहीं पर हाँ कुछ दिन बाद उनकी पुत्री भी हमारी इस चर्चा में भाग लेने लगी। पहले तो वह बैठे-बैठे सुनती रहती पर बाद में वह बीच-बीच में कुछ-कुछ बोलने भी लगी। उसकी युक्तियों में प्राण होता था और मुझे उनका उत्तर देने से पूर्व कुछ सोचना और समझना पड़ता था। और कभी-कभी तो मैं निरुत्तर भी हो जाता, पर प्रकान्तर से कुछ न कुछ बात बनानी ही पड़ती। समय बीतने लगा।

पहले यह लोग तो मुझे बुलाने के लिए अपना नौकर भेजते, पर बाद में मैंने उसे बन्द कर दिया और मैं स्वयं ही जाने लगा था।

एक दिन...

"अरे बुधुआ ! क्या वे नहीं हैं ?"

"सरकार ऊ तो इहाँ हैं नहीं रात लखनऊ से तार आया रहा सो वहीं गये रहैं।"

मेरे पैर लौटे ही थे।

"आइए"

पैर लौटते हुए रह गये और मैं ऊपर चला गया।

"क्या वे बाहर चले गये हैं ?"

"जी हाँ दादी जी का तार आया था लखनऊ से। वहीं गये हैं कल तक आ जाएँगे। "क्या परिवार के शेष सभी लोग वहीं रहते हैं। "जी हाँ"

"बैठिए ना।"

मैं सकुचाता सा बैठ गया पर मैंने यह सब व्यक्त नहीं होने दिया बुधुआ चाय लाया कुछ देर बाद। और रखकर चला गया।

"शुरू कीजिए।"

चाय बनाकर इन्दु ने कहा। चाय प्रारम्भ हुई हम दोनों मौन थे। पहले मैं ही बोला—

"परीक्षा की तैयारियाँ तो खूब चल रही होंगी ?"

"जी यह तो आपकी कृपा है।"

मैंने कहा..."अमुक पुस्तक के नोट्स तो ठीक कर लिए हैं।"

"ठीक तो क्या पर बना लिए हैं।"

"पर क्यों ?"

"यदि आप उन्हें ठीक कर दें।"

"यह भी कोई संकोच की बात थी। मुझसे पहले ही क्यों न कह दिया।"

"इन्दु गई और अपनी कापी ले आई।"

मैंने एक ही निगाह में कापी का अधिक से अधिक भाग देख डाला।

मुझे पता नहीं उसमें क्या लिखा था और क्या नहीं। हृदय में बस लिपि के विषय में ही ऊहापोह चल रहा था। कुछ समय बाद मैंने विदा माँगी और मैं चल पड़ा।

घर आकर कुछ मानसिक संघर्ष के बाद मैंने निश्चय कर लिया कि यह वही इन्दु है।

अभी कालेज की पत्रिक निकलने ही वाली थी। मैंने अब की बार भी उसमें अपनी रचना दे दी।

कदाचित् इन्दु को मेरे रचना देने से पूर्व यह ज्ञात नहीं था कि वह मैं ही हूँ जिसकी रचनायें इस पत्रिका में बहुत पहले से ही छपती चली आ रही हैं। इस साक्षात्कार ने हमारा सम्बन्ध एक विशेष प्रकार का ही बना दिया। हम एक दूसरे के सुख-दुःख में भाग लेने लगे और हमारी दुनियाँ की चारदीवारी सपनों से बनने लगी। अब मैं अनियमित समय पर जब इच्छा होती; उनके पिता के होते हुए या उनके अभाव में भी वहाँ चला जाता। रविवार को मेरे मित्र भी मेरे साथ जाते एक दिन उनके घर कुछ उनके और भी मित्र आये हुए थे। कुछ देर की इधर-उधर की बातों के बाद उन में से एक ने इन्दु से कोई कविता सुनाने का आग्रह किया। पहले तो वह इस आग्रह से बहुत बचना चाही

पर अन्त में वह इस आग्रह को न टाल सकी। उन्होंने एक रचना पढ़ी। मैंने सुनी तो मुझे रचना पूर्व परिचित सी प्रतीत हुई।

"किसी ने अपने भावों को शब्दों में बाँधकर रख दिया है।" मैंने कहा। "किसी ने ? अरे साहब यह इन की अपनी रचना है।" वही सज्जन बोले—

"मैंने तो यह जानने के लिए ही इस शब्द का प्रयोग किया था।"

बाद में मुझे याद करने पर ध्यान आया कि यह रचना 'नीरजा' के नाम से कालेज पत्रिका में छपी थी। एक दिन मैंने इंदु को नीरजा के नाम से संबोधित करके यह भी जान लिया कि यह इन्हीं का उपनाम है।

परीक्षाएँ समाप्त हो गयीं। छुट्टी के दिनों में इन्दु के पिता मेरा साथ ही न छोड़ते। कई बार खाना भी उन्हीं के यहाँ होता। सोने के अतिरिक्त मेरा अधिकतर समय उन्हीं के यहाँ बीतता। अनेकों बार सब मिलकर नौका-विहार को जाते। कभी-कभी मैं और इन्दु ही अकेले रह जाते कुछ झिझके-झिझके सहमे-सहमे।

हमारा परिचय द्रुत गति से बढ़ने लगा और मुझे शंका होने लगी कि कहीं इन्दु ...। पर हम एक दूसरे से स्पष्ट कुछ भी न कहते।

ऐसी कल्पना करके मेरा मन नाच उठता। पर न जाने क्यों मेरी आँखों को हर समय प्रश्न बोधक चिन्ह ही अपने सामने दीखते।

वे सज्जन जिन्होंने उस दिन कविता सुनाने को कहा था...भी आजकल इनके घर प्रायः आते थे। इनके कारण हमारे वार्तालाप का सूत्र और भी लम्बा हो जाता था। जब भी ये बीच में बोलते इन्दु विशेष दिलचस्पी लेती पर जब मैं कुछ कहता तो वह चुप सी रह जाती। जब कभी इन्दु मुझे अकेले में मिलती उसकी वाणी में संकोच और उसे कुछ शंकाएँ सी घेरे रहतीं; पर जब वह उनके साथ कभी ऐसी ही

स्थिति में होती तो खूब खुलकर बातें करती, हँसती और खिलखिलाती यह सब मुझसे न सहा जाता और कई बार तो मैं उनके यहाँ आकर भी लौट आता था। आखिर जब मुझ से न रहा गया तो एक दिन...

"ये जो रोज अक्सर आते हैं कौन हैं ?"

"किनके विषय में कह रहे हैं आप ?"

"तो आप समझ नहीं सकीं ?"

"नहीं तो। अरे आप नरेश के विषय में तो नहीं कह रहें ?"

"जी हाँ तो समझ गयीं आप बड़ी चतुर हो न।"

"भला यह भी कोई चतुरता है ! अपने व्यक्ति के विषय में कौन नहीं समझ सकता भला आप ही बताइए ?"

"हाँ तो "अपने व्यक्ति" क्या हैं वे आपके भाई या......?"

"जी नहीं एक परिचित।"

"कब से है आपका और इनका परिचय ?"

"बचपन से।"

"फिर तो पुरानी पहिचान है।"

"जी हां बहुत पुरानी।" फिर कहा "देवता हैं देवता" मुझे इनके विचार बहुस अच्छे लगते हैं।"

"और वे"

"क्या कहा ?" मुझे झटक कर जैसे किसी ने कहा हो—"तेरा अधिकार क्या है जो तू ऐसी बातें किये चला जा रहा है" मैं संभल गया।

"जी, कह रह था ऐसे व्यक्ति पुण्य से मिलते हैं ।"

"मैं तात्पर्य नही समझी ।"

"बात तो स्पष्ट है" बातें कुछ गम्भीर होती, इससे पूर्व ही मै बातें बदलता हुआ बोला—

"व्यर्थ में समय कितनी जल्दी बीत जाता है । छुट्टियाँ समाप्त होने को है; अब शीघ्र ही परिणाम प्रकाशित होगा ।"

"परिणाम"

बस विषय बदल गया और कुछ ही देर में मैं वहाँ से विदा लेकर चल पड़ा । मैंने सोचा जानकर भी अनजान बनने से क्या ? आना-जाना बन्द कर दो ।

फिर मैंने कुछ बहाने बनाये और धीरे-धीरे उनके यहाँ आना-जाना नही के बराबर कर दिया इन्दु मुझसे कहा करती थी "यदि हम साथ रह सकें तो मेरी बहुत उन्नति हो सकती है, प्रोफेसर साहब मुझे तुम्हारा घर बहुत अच्छा लगता है ।" मै अपने निश्चय के अनुसार इन वाक्यों का अर्थ समझ कर इनको अपने चित्त से हटाने का प्रयत्न करने लगा ।

कभी-कभी इन्दु के यहाँ से अब पत्र भी आते; जिनका लेखन प्रकार पहिले से बहुत भिन्न था पहले पत्रो से भिन्न था पहले पत्रों मे सरलता थी; पर अब उनमें गभीरता आ चुकी थी । अब उनमे पहेलियाँ सी होती थी । जिनसे जो चाहें हल निकाल सकते थे ।

समय बीतता गया पर हृदय को शांति न मिली । मै सोचना, "क्या यह सब कुछ प्रदर्शन था ? ढोंग था?" हृदय और बुद्धि का द्वन्द्व छिड़ गया कोई कहता "ना" और कोई कहता "हाँ"

जब मैं इससे व्याकुल हो उठा तो एक दिन मैंने फिर इन्दु से मिलने की सोची, अन्तिम निर्णय करने के लिए उधर इन्दु का परीक्षा परिणाम भी ़ी प्रकाशित हुआ था। वह प्रथम रही थी मैं इसी बहाने से प्रातःकाल ई दस बजे गया। मेरे पैर दृढ़ता से बढ़ रहे थे, पर न जाने कौन मुझे ़स समय जाने से रोक गया।

मैंने कुछ दिनों से अपने रहने का प्रबन्ध कालेज के पास ही एक मकान में कर लिया था। स्थान तो दूर था, पर मैंने कुछ ही देर में अपने को उनके भवन के सम्मुख पाया। मन भारी था पर पैर आगे बढ़ते ही चले गये।

मैं इन्दु के कमरे की ओर बढ़ा। द्वार बन्द थे, पर दरवाजे शीशे के थे। अन्दर का भाग स्पष्ट दीखता था।

मैंने पास जाकर क्या देखा और क्या समझा; बस याद करके आज भी हृदय काँप उठता है।

एक सोफे पर नरेश और इन्दु बैठे थे। उनके बीच हास-प्रतिहास की धारा बह रही थी - इन्दु को नरेश उसके मना करने पर भी अपने हाथ से कुछ खिलाये चला जा रहा था। मेरा माथा ठनका। मैं वहाँ रुक कर कुछ और भी देखना चाहता था पर रुक न सका—मैं तेजी से लौट पड़ा। शायद मेरे पैरों की आवाज से उन्होंने दरवाजा खोला। इन्दु मुझे पहचान गई और कदाचित् वह कुछ जान भी गई हो।

"प्रोफेसर साहब"

"प्रोफेसर श्याम"

"बाबूजी" पीछे से आवाजें आईं; 'पर मैं बढ़ता ही चला गया। जैसे मैंने कुछ सुना ही न हो। बाहर सड़क पर बस तैयार थी मैं झट

लपक कर उस में बैठ गया। जैसे मरे पैरों की शक्ति निकल गई हो।

उस दिन के बाद जब भी मुझे इन्दु मिलती, मैं उससे तीखीं और व्यंगपूर्ण बातें करता। मैं उससे प्रायः नरेश के हाल पूछता और जब वह उनको मुझे बताती तो मन में आग सी लग जाती। वाह रे हृदय।

समय की गति पूर्ववत् थी दिनों के सप्ताह और उनके माह बनने लगे। अब इन्दु का भी दिखाई देना प्रायः बन्द हो गया था।

कोई दस मास पश्चात् मेरे पास नरेश का एक पत्र आया, जिसमें इन्दु के विवाह में मुझे निश्चय आने को आमन्त्रित किया गया था।

मैं झट से उसी के साथ आए छपे आमन्त्रण पत्र को पढ़ने लगा। घर का नाम था "एन शर्मा, एम० ए०।"

एक ही क्षण में नस-नस में गूँज गया, "नरेश" शर्मा, एम० ए०।" मैं विवाह में नहीं जाना चाहता था। पर उसके पत्र अब तक मेरी प्रायः आत्मशांति को भंग किया करते थे। अतः सोचा इन पत्रों को भी लौटा दूँगा और जो कुछ कहना शेष है, वह भी आज कह दूँ।

मैंने वह पुलिंदा निकाला और उनके घर की ओर चल दिया। जब पहुँचा तो संध्या हो ली थी, फेरे पड़ना आरम्भ हो चुका था। सारे घर में आनन्द और उल्लास था न जाने क्यों मेरे पैर कुछ न देखना चाहते हुये भी उनके उधर बढ़ चले मैंने देखा पंडित मन्त्र बोल रहा है और बराबर अग्नि में सामग्री डाली जा रही है।

पर है यह क्या ? नरेश फेरों में कन्यादान के समय कन्यादान कर रहा है बुद्धि ने कहा आँखों का धोखा है ! मन ने कहा "नहीं" इसी प्रकार मैं सोच ही रहा था कि नरेश विधि सम्पन्न करके मेरे ही पास आकर बोला...

"अरे प्रोफेसर श्याम आप ? ऐसे किस चिंता में हो बहुत दिनों से

कहाँ रहे इधर हम इन्तजार कर रहे हैं, आपका कुछ पता ही नहीं" और भी जाने उसने क्या क्या कहा, मुझे पता नहीं मेरे मुँह से सिर्फ इतना ही निकला "नरेश तुम"।

"हाँ हाँ भई ? मैं तबियत तो ठीक है ना ?"

"हाँ अच्छा हूँ" इतनी ही देर में नरेश को किसी ने आवाज दे ली। वह बहुत व्यस्त था। मुझ से क्षमा माँग कर मुझे बैठने को कह कर आप चला गया।

मैं वहीं पास को कुर्सी पर बैठ पड़ा। मेरी समझ में कुछ नहीं आता था। लहरों की भाँति अनेकों प्रश्न उठ रहे थे पर बिना उत्तर के ही ये सब शांत हो जाते।

संस्कार संम्पन्न हो चुका था। मैंने नरेश से एक बार इन्दु से मिलने को कहा। कल विदा होनी थी नरेश विदा की तैयारी में व्यस्त था उसने मुझे एक कमरे की ओर इंगित करके कहा "इन्दु इसी कमरे में है। आप चले जाइये" इन्दु अकेली थी।

"इन्दु"

"आप"

"हाँ इन्दु मैं।

"आप क्यों आये हो"

"बस क्षमा माँगने। कर दो तो अहसान होगा"

"आपने कोई अपराध तो नहीं किया उस की आवाज भरी हुई थी।

"इन्दु तुम्हें पहिचान न सका"

"जो बीत गई, उसे क्यों याद दिलाने आये हो"

"यह सब क्या हो गया इन्दु"

मैं भावावेश में बह चला ।

"तुम्हे मुझ से कोई नही छीन सकता । तुम मेरी हो यह विवाह प्रदर्शन है । मेरे हाथ उसकी ओर लपके ।

"दूर रहो मैं विवाहित हूँ किसी की पत्नी हूँ । तुम तो पुरुष । हो प्रोफेसर, कुछ बुद्धि से काम लो जीवन में सच्ची शांति त्याग से मिलती है ।"

मेरी आँखे गीली हो चुकी थीं ।

"मुझे भी तो देखो क्या मुझे यह वेदना नही पर...सहसा गला रुँध गया फिर सम्हल कर उसने कहा—

"हमे यह न भूलना चाहिए कि अब मैं एक पर स्त्री और तुम पर पुरुष हो"

'हाँ एक कुलीन स्त्री के ऐसे पत्र किसी पर पुरुष के पास रहें, यह अच्छा नही । और सच्ची शाति भी तो त्याग से ही मिलती है तो यह लो मैं अपने समस्त जीवन की पूंजो को तुम्हारे चरणों पर चढ़ाए देता हूँ ।"

मैंने वे सभी पत्र उसके पैरों पर रख दिए हम दोनों एक क्षण मौन रहे फिर सहसा दो-दो आँखों मे चार-चार बून्दे आकर रह गईं । मैं अधिक देर तक न ठहर सका और उठ कर चल दिया । प्रातःकाल आया । विदा का समय । रात तो कैसे न कैसे बीत गई पर यह समय काटे नही कटता था ।

बहुत सवेरे से ही घर के आगे भिखारियों की भीड़ जमा हो रही थी ।

कपड़ा, पैसे, खाना सब को कुछ न कुछ मिल रहा था। विदा का समय आगया। इन्दु किसी अपरिचित के साथ बँधी धीरे-धीरे जीना उतर रही थी। सबकी आँखों में आँसू थे जैसे मंगल कार्य के समाप्त होने पर सब अर्घ्य चढ़ा रहे हों। इन्दु के पिता जी को आज इन्दु की माँ के न होने का अभाव शतषा मूर्तमान हो कर एक साथ सैकड़ों बिच्छुओं के दर्शन के समान असह्य हो रहा था और उनके स्थान की पूर्ति करते हुये वे स्वयं अपनी बेटी को पकड़े हुये चल रहे थे।

मैं यह सब दृश्य उस स्थान से खड़ा देख रहा था, जहाँ प्रायः मुझे जाते समय इन्दु देखा करती थी।

अभी इन्दु नीचे पहुँच कर मुड़ना ही चहाती थी...

मुझ से अब न देखा गया। मुझे चक्कर आया पैर लड़खड़ाये और मैं जीने से नोचे गिर पड़ा।

गिरने की आवाज सुनकर सब रुक गये। इन्दु भी मुड़कर, जो जीने के नीचे ही थी... खड़ी हो गई।

'मैं नीचे गिरा और मेरा सिर उसके पैरों पर पड़ा। उसने बिछिये पहिने थे। श्रद्धा सहित मैंने मस्तक से उन पैरों में महावर भर दी"

"तो यह उसके पैरों के बिछिए के निशान हैं ?"

"इसे निशान न कहो, यह मेरी संपत्ति है विजय, यह मुझे इन्दु से मिली है अभी भिखारियों को जब कुछ न कुछ मिल रहा था तो मैं खाली कैसे रह जाता। मुझे तो लगा जैसे मेरे सिर ने प्यार से उसके चरण कमलों की ललाई अपने बीच भर ली हो।"

विजय भरे गले से बोला "श्यामू तुम कहानी सुना रहे हो। हाँ मैंने

समझ लिया कि यह इन्दु का दान है तो फिर आगे। अब वह कहाँ है ?

"पता नहीं सुना था कि छः महिने बाद वह सदा के लिए कहीं चली गई। अब तो बस उसकी दो स्मृतियाँ शेष हैं।

एक तो यह उसका वरदान और दूसरी, मेरा पावन मंदिर, उन की समाधि ! तुम भी चलोगे विजय ! मैं तो वहाँ रोज़ सन्ध्या को जाता हूँ।